RNI : MPHIN32709

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन

प्रवेशांक

वर्ष : 1, अंक : 1
अप्रैल-जून 2016
मूल्य - 50 रुपये

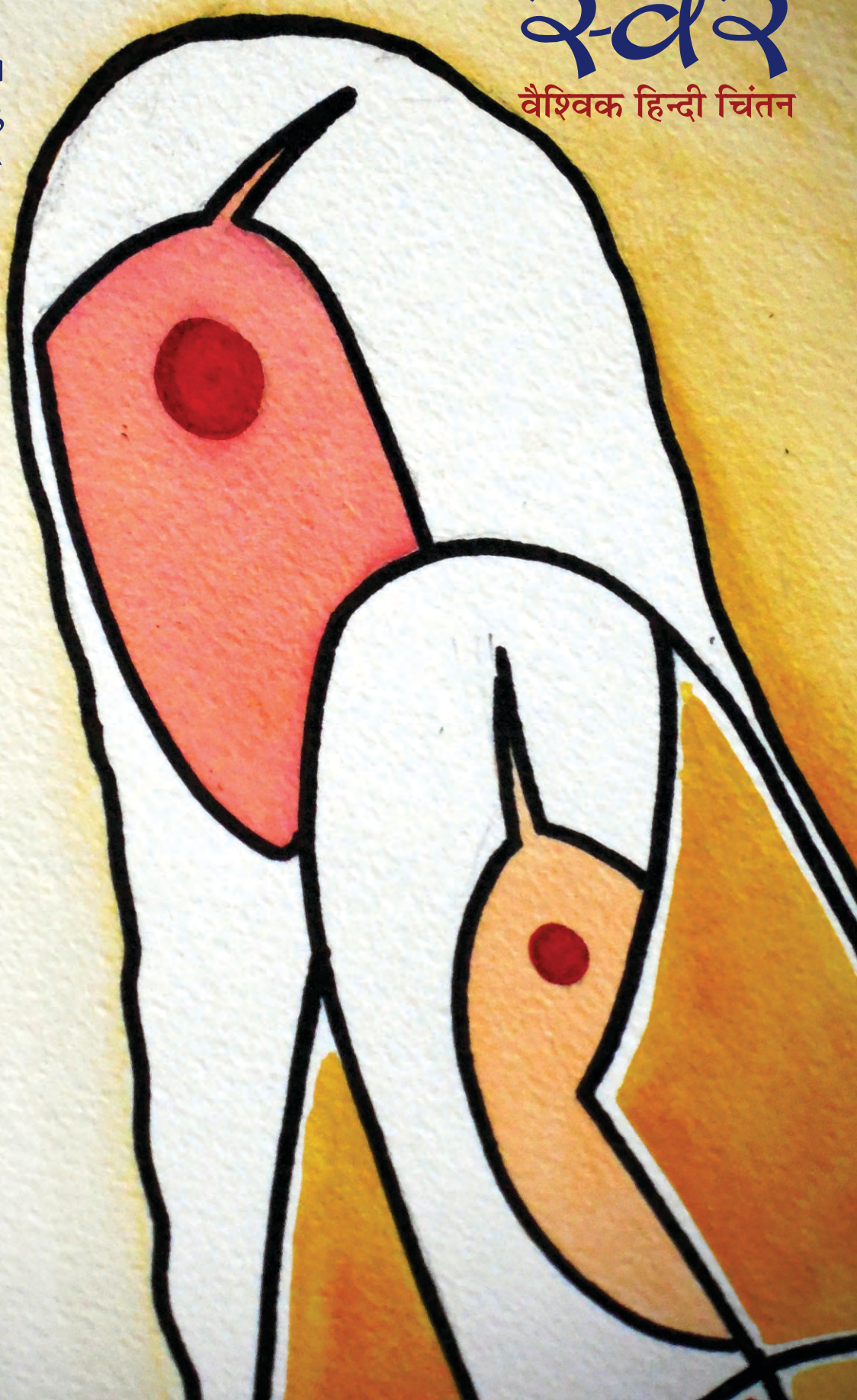

शिवना प्रकाशन के दो चर्चित उपन्यास

अकाल में उत्सव
(पंकज सुबीर)

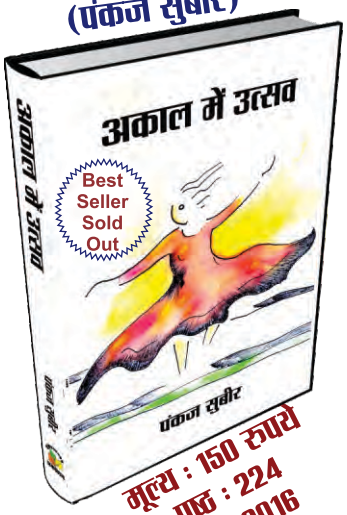

मूल्य : 150 रुपये
पृष्ठ : 224
वर्ष : 2016

- प्रिय सुबीर, तुम्हारा उपन्यास पढ़ा। रचना मुझे बेचैन कर गयी। इसका कथ्य जितना समकालीन है उतना ही सर्वकालीन । तुमने प्रेमचंद और श्रीलाल शुक्ल के आगे का गाँव दिखाया है। किसान आज भी शोषित है, प्रणाली बदल गयी है। विस्मय हुआ कि तुम ग्रामीण व्यवस्था को कितनी निकट से जानते हो। मेरी बधाई । –ममता कालिया (वरिष्ठ कहानीकार, उपन्यासकार)
- प्रशासन और किसान, ऐसी कहानी किसानों को लेकर मेरी नज़र में तो आई नहीं। जो इस को शुरू कर लेगा वो खत्म करने से पहले नहीं छोड़ेगा इसको। मेरे दिमाग में मांझी-पिंजरी थे, फिर सुधा-चंदर थे, अब रामप्रसाद-कमला छा गए हैं। –यशपाल शर्मा (सुप्रसिद्ध फिल्म अभिनेता)
- 'अकाल में उत्सव' हमारे समय का महत्त्वपूर्ण उपन्यास है, लेखक पंकज सुबीर ने 'अकाल में उत्सव' के माध्यम से एक ऐसी कृति दी है जो हमारे देश को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण औजार साबित हो सकती है। – पवन कुमार (शायर, वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी उप्र)
- 'अकाल में उत्सव' पढ़कर भूलने वाला उपन्यास नहीं है। ये बहुत दिनों तक आपके साथ रहता है। किसान हितैषी सरकारी दावों के बाद भी किसान क्यों आत्महत्या कर रहा है ये बात उपन्यास में बहुत ताकतवर तरीके से कही है। – ब्रजेश राजपूत (लेखक, विशेष संवाददाता, एबीपी न्यूज़, मप्र)
- इस उपन्यास को लिखने में जितनी मेहनत पंकज ने की है, वो पूरी की पूरी हमें दिखाई देती है। मैं आज भी 'अकाल में उत्सव' की गिरफ़्त में हूँ, इसे पढ़ने के बाद अब कुछ और पढ़ने का मन ही नहीं हो रहा। किसानों के साथ की गयी पंकज की तपस्या सफल हुई है, इस अद्भुत उपन्यास के रूप में। –वंदना अवस्थी दुबे (समीक्षक तथा कहानीकार)
- 'अकाल में उत्सव' जैसा उपन्यास चमन के दीदावर की तरह मुद्दतों में और मुश्किलों से लिखा जाता है,ये वो उपन्यास है जो पाठक के मन तक पहुँचता है और उसे झकझोर कर सोचने पर विवश कर देता है। –इस्मत ज़ैदी शिफ़ा (उर्दू शायरा तथा समीक्षक)
- कोशिश करने पर भी 'अकाल में उत्सव' के पात्र उतर नहीं रहे दिलो-दिमाग़ से । ये उपन्यास पढ़ने के कई दिन बाद तक निवाला खाना पाप लगता था, दृष्टिकोण बदला है बहुत सी बातों के प्रति । –पारुल सिंह (कवयित्री)

नक़्क़ाशीदार केबिनेट
(सुधा ओम ढींगरा)

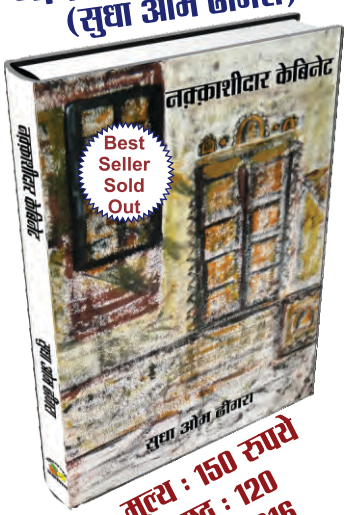

मूल्य : 150 रुपये
पृष्ठ : 120
वर्ष : 2016

- यह उपन्यास मैं एक ही सिटिंग में पढ़ गया। यह उस पंजाब की गाथा है जहाँ देश की एक मार्शल कौम पंजाबी सिख सिर्फ इसलिए नशे और अपराध की दुनिया की शिकार हो गई क्योंकि केंद्र की सरकारों ने इस पूरे प्रांत और इस पूरी कौम को अकेला छोड़ दिया था। अद्भुत पुस्तक है यह। भाषा एकदम सधी हुई और सहज। –शम्भुनाथ शुक्ला (प्रख्यात पत्रकार और समीक्षक)
- उपन्यास बेहद पुरजोर तरीके से अपनी बात कहता है, इसको पढ़ना जरूर चाहिये ताकि दो संस्कृतियों की दृश्य सीमा रेखा को महसूस किया जा सके, उसे समझा जा सके । –जया जादवानी (वरिष्ठ कथाकार)
- उपन्यास वह होता है जो अपने को पढ़ा ले जाए। इस कसौटी पर खरा उतरता है यह उपन्यास। बहुत सारी समस्याओं से अवगत कराता है यह उपन्यास। –सुदर्शन प्रियदर्शिनी (वरिष्ठ कथाकार)
- मानवीय स्वभाव व मूल्यों की बेमिसाल कहानी का अप्रतिम प्रस्तुतीकरण है ये नक्काशीदार केबिनेट। पढ़ते समय दृश्यों को चलचित्र की भांति उभारने में विशेषज्ञता है सुधा जी के पास। अंत तक जिज्ञासा बनी रहती है। – मुकेश दुबे (कहानीकार, उपन्यासकार)
- 'नक्काशीदार केबिनेट' सिर्फ़ एक नक्काशी की हुई केबिनेट के ऊपर की कहानी नहीं, वरन ये एक ऐसी ज़िन्दगी रूपी केबिनेट के ऊपर नक्काशी की गई है, जिसे पढ़कर लगता है कि इस ज़िन्दगी में हमने क्या कुछ किया है, कैसे किया है। –अभिषेक कुमार 'अभी' (कवि, मीडियाकर्मी)
- कथा बहुत ही रोचक, मानवीय मनोवृत्ति के सभी नौ रसों से परिपूर्ण। पुस्तक पढ़ते पढ़ते कई जगह मेरी आँखें छलक गईं। उपन्यास मेरे मन मस्तिष्क पर ऐसे चला...जैसे कि मैं कोई बहुत ही दर्द भरी फिल्म देख रहा हूँ। –सुरेन्द्र साधक (कवि)

शिवना प्रकाशन
प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9584425995,
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545, 07562695918
मोबाइल : 09584425995
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

सलाहकार संपादक
डॉ. कमल किशोर गोयनका

ऑनलाइन 'विभोम स्वर' :
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
http://vibhomswar.blogspot.in
फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar

एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष)
1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)

आवरण चित्र तथा अंदर के रेखाचित्र
रोहित रूसिया
डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, शहरयार अमजद ख़ान
तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर मध्यप्रदेश रहेगा।

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन

वर्ष : 1, अंक : 1, त्रैमासिक : अप्रैल-जून 2016
RNI Title Code :- MPHIN32709

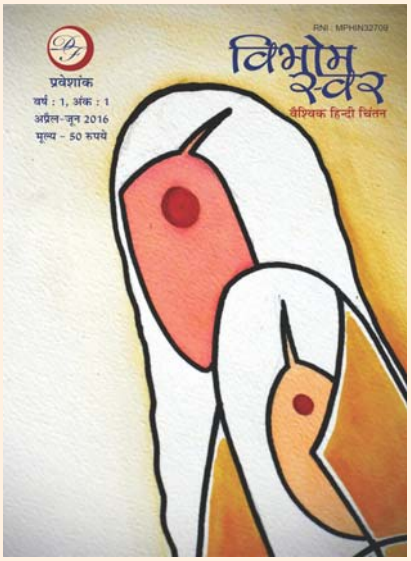

इस अंक में

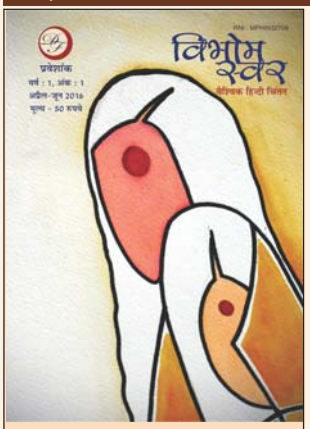

विभोम-स्वर
वर्ष : 1, अंक : 1
अप्रैल-जून 2016

सम्पादकीय 5
मित्रनामा 7

कहानियाँ
अजपा जाप
हर्षबाला 9
नीली तितली
भावना सक्सैना 13
छुअन
विकेश निझावन 16
कैंपस लव
आकांक्षा पारे 22
बिग बॉय
सपना मांगलिक 25
श्यामली जीजी
रेखा राजवंशी 28

लघु कथा
हूटर
डॉ. संध्या तिवारी 30

व्यंग्य
अथ गांधारी युग कथा
प्रेम जनमेजय 31
दोहे
रमेश तैलंग के दोहे 21

नवगीत
शशि पुरवार के नवगीत 46

कविताएँ
सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कविताएँ 48
हरकीरत 'हीर' की क्षणिकाएँ 50
रमेश मित्तल की कविताएँ 51
अशोक आंद्रे की कविताएँ 52
कृष्ण कान्त पण्ड्या की कविता 54

ग़ज़लें
अनिरुद्ध सिन्हा 12
देवेन्द्र आर्य 24, 38
अदम गोंडवी 35

संस्मरण
स्मृति-चिह्न : मूर्तिकार वेर्नर
शकुन्तला बहादुर 36

स्मरण
ग़ज़ल का अदम-लिबास
गौतम राजरिशी 33

लेख
नागार्जुन के काव्य में प्रकृति का स्वरूप
आज़र ख़ान 39
आदिवासी लोककथाओं में लोक विश्वास
सुशील कुमार शैली 43

पुस्तक समीक्षा
अँधेरे का मध्य बिंदु (वंदना गुप्ता)
मुकेश दुबे 55
किनारे की चट्टान (पवन चौहान)
समीक्षक : अंजू शर्मा 56
हमें साँच ने मारा (महेन्द्र नेह)
समीक्षक : सौरभ पाण्डेय 57
101 किताबें ग़ज़लों की...(नीरज गोस्वामी)
समीक्षक : आशीष अन्चिहार 61
अकाल में उत्सव (पंकज सुबीर)
समीक्षक : पवन कुमार 62
नक़्क़ाशीदार केबिनेट (सुधा ओम ढींगरा)
समीक्षक - डॉ. अमिता 67
कहीं कुछ रिक्त है (कविता विकास)
समीक्षक : ज्योति खरे 72

साहित्यिक समाचार
समाचार सार 73

परिवर्तन जीवन का नियम है, उसे स्वीकारना पड़ता ही है।

कई बार नियति नटी ऐसी भंगिमाओं, मुद्राओं और लय-ताल पर नृत्य करती है कि मानव बस चौंक कर रह जाता है। सोचने का समय ही नहीं मिलता। कुछ ऐसा ही हुआ गत वर्ष के अंत में। हिन्दी चेतना को भारत में बंद करने का निर्णय लेना पड़ा। कारण चाहे विश्वसनीय थे। पर नियति की भृकुटि में परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ। परिवर्तन जीवन का नियम है। उसे स्वीकारना पड़ता ही है। नियति कोई विकल्प नहीं छोड़ती।

'हिन्दी चेतना' चूँकि कैनेडा से प्रकाशित होती है अत: उसके लिये भारत में ISSN नंबर तथा RNI नंबर प्राप्त करने में परेशानी आ रही थी। इन नंबरों के बिना शोधार्थियों तथा प्राध्यापकों को पत्रिका में प्रकाशित होने वाले आलेखों पर अंक नहीं प्राप्त हो पा रहे थे। साथ ही विज्ञापन आदि भी लेने में टीम को परेशानी आ रही थी। इसलिये यह तय किया गया कि हिन्दी चेतना कैनेडा से ही निकलती रहे और भारत तथा अमेरिका से एक नई पत्रिका प्रारंभ की जाए; जिसका प्रकाशन दोनों स्थानों से हो। इस दिशा में पिछले 6 माह से कार्य चल रहा था। भारत में RNI ने 'विभोम-स्वर' नाम से पत्रिका को स्वीकृति दी है। पत्रिका का प्रवेशांक आपके हाथों में है और आपने देखा होगा इसकी टैग लाइन है 'वैश्विक हिन्दी चिंतन'..... हमारी भरपूर कोशिश रहेगी कि यह पत्रिका विश्व भर में हिन्दी का स्वर बने। आप सब का स्नेह और मार्गदर्शन हमारी टीम को पहले भी भरपूर मिलता रहा है तथा अब जब यह टीम एक नई पत्रिका के साथ सामने आई है तो हमें पूर्ण विश्वास है कि आप सब हमारे साथ पूर्व की ही तरह खड़े होंगे।

हिन्दी चेतना का मैंने सात वर्ष संपादन किया। वे अनुभव मेरे लिए बेजोड़ हैं। हिन्दी चेतना के मुख्य संपादक बड़े भाई श्री श्याम त्रिपाठी का स्नेह मेरा संबल है।

अनुभवों और स्नेह के पहिये यात्रा को सहजता से पूरा करवाते हैं। सात वर्षों में आप सब पाठकों द्वारा बाँटे गए अनुभव और आप द्वारा दिया गया स्नेह मेरी निधि है। मेरी शक्ति है।

मित्रो, नियति नटी ने गत वर्ष साहित्य प्रेमियों को अपने नृत्य से रुलाया भी। एक सुबह भाई पंकज सुबीर का फ़ोन आया कि ग़ालिब की शराब छूट गई। रवींद्र कालिया नहीं रहे। 'एबीसीडी', '17 रानडे रोड' (उपन्यास) 'नौ साल छोटी पत्नी' (कहानी संग्रह) और 'ग़ालिब छुटी शराब' (संस्मरण) 'नींद क्यों रात भर नहीं आती' (व्यंग्य संग्रह)

sudhadrishti@gmail.com

पुस्तकें मैंने पढ़ी हैं। समाचार सुन कर सबसे पहले अपनी लाइब्रेरी में जाकर उनकी इन पुस्तकों का सहलाया। दूर-दराज़ बैठी उनकी एक पाठिका ने इस तरह अपना अंतिम प्रणाम उन तक पहुँचाया। दोस्तों आपने महसूस किया होगा कि लेखक का पार्थिव शरीर जग से चला जाता है, रूह तो पुस्तकों में बसी आपसे जुड़ी रहती है।

महीप सिंह जी की 'चर्चित कहानियाँ' फिर से पढ़ीं। यह मेरी श्रद्धांजलि थी उनके प्रति। वे भी तो साहित्य जगत् को सूना कर गए। 'सुबह के फूल', 'उजाले के उल्लू', 'घिराव', 'कुछ और कितना', 'मेरी प्रिय कहानियाँ', 'समग्र कहानियाँ', 'कितने संबंध', 'इक्यावन कहानियाँ', 'धूप की उँगलियों के निशान' उनकी किताबों से पाठक वर्ग उनकी रूह से जुड़ा रहेगा। शब्दों, वाक्यों में चमकते रहेंगे साहित्य के ये रत्न।

अब्दुल कलाम साहब भी अपने कार्यों से दिलों में समाए रहेंगे।

और जब-जब चाँद और सूरज निकलेंगे निदा फ़ाज़ली याद आएँगे।

मस्जिदों-मन्दिरों की दुनिया में
मुझको पहचानते कहाँ हैं लोग
रोज़ मैं चाँद बन के आता हूँ
दिन में सूरज सा जगमगाता हूँ।

जनाब निदा फ़ाज़ली भी इस फ़ानी जहाँ को गत वर्ष तन्हा छोड़ गए। उनकी प्रमुख कृतियाँ -आँखों भर आकाश, मौसम आते-जाते हैं, खोया हुआ सा कुछ, लफ़्ज़ों के फूल, मोर नाच, आँख और ख़्वाब के दरमियाँ, सफ़र में धूप तो होगी में समाई उनकी रूह हमें पुकारती रहेगी-

घर से मस्जिद है बड़ी दूर, चलो ये कर लें।
किसी रोते हुए बच्चे को हँसाया जाए॥

इस दर्शन को क्या हम भुला पाएँगे?

वैसे नियति नटी ने 2015 में अपनी मुद्राओं से साहित्य की दुनिया में बहुत से लोगों को प्रसन्न भी किया। कई लेखक सम्मानित हुए। विभोम-स्वर की टीम की ओर से सभी सम्मानित साहित्यकारों को बधाई!!

मित्रो, आपसे संवाद की हमेशा चाह रहेगी और आपके सुझावों और प्रतिक्रियाओं का इंतज़ार.....

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

वक़्त भी एक गिलहरी की तरह होता है, जो अपने दाँतों से धीरे-धीरे कुतरता रहता है सब कुछ। हमें पता ही नहीं चलता कि कब वह उसी धीमी गति से कुतरता हुआ ख़त्म कर देता है बहुत कुछ। यह कुतरने की क्रिया मगर कभी समाप्त नहीं होती।

मित्रनामा

'विश्व-स्वर' की पत्रिका बने

'विभोम-स्वर' का स्वागत। यह हिन्दी भाषा की 'विश्व-स्वर' की पत्रिका बने, यही कामना है। हिन्दी विश्व अब एक सत्यता है और यह निरन्तर व्यापक एवं घनीभूत हो रहा है। इस हिन्दी विश्व की आवाज़ भूमंडल में गूँजे और हिन्द तथा हिन्दी की अस्मिता की पहचान और उसकी सार्थकता सर्वत्र पहुँचे, इस महत् इच्छा के साथ मैं 'विभोम-स्वर' का स्वागत करता हूँ।

-डॉ.कमल किशोर गोयनका
उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल

****

'चले हमारे साथ'

सुधा जी, लगता है कि आपको जन्म के समय सक्रियता की घुट्टी पिलाई गई है। आप न तो स्वयं चैन से बैठती हैं और न ही अपने सहयात्रियों को चैन से बैठने देती हैं। स्वयं तो चुनौतियाँ स्वीकार करती ही हैं कबीर की तरह मुराड़ा हाथ में थामकर चुनौती देती हैं, 'चले हमारे साथ।' आपने तो ओखली में सर दिया हुआ है और मूसलों को निमंत्रित कर रही हैं। अभी तो आपने उपन्यास लिखने की चुनौती को स्वीकार कर 'नक़्क़ाशीदार केबिनेट' जैसी सशक्त रचना को पाठकों की अदालत में प्रस्तुत किया है। मुझे अच्छा लगा कि उपन्यास का मुहावरा आपकी पकड़ में आ गया है और शीघ्र ही कुछ अच्छी औपन्यासिक कृतियाँ आपकी कलम से पढ़ने को मिलेगी। परंतु आपने तो अपने लेखकीय पक्ष को बैक सीट पर डाल संपादक को एक अलग स्वरूप में प्रस्तुत करने का निर्णय ले लिया है। वैश्विक हिन्दी चिंतन की पत्रिका 'विभोम-स्वर' का आपके प्रधान संपादकत्व में निकलने की घोषणा पढ़ मैं सर थाम बैठ गया। मैंने भी संपादन की इस कुल्हाड़ी को अपने लेखकीय कदमों में मारा हुआ है और जानता हूँ कि इस कुल्हाड़ी के कारण जब ज़ख़्मी और दर्दीले पैर चल नहीं पाते हैं तो कैसे यह दर्द अंग-अंग में समा जाता है। पत्रिका निकालकर आप कुछ के मित्र चाहें बन जाएँ पर दुश्मन अनेक के बन जाते हैं। सैंकड़ों रचनाओं में से कुछ का चुनाव कर शेष के शत्रु बनते हैं और जिसकी पुस्तक की समीक्षा न दें उसके घनघोर शत्रु। आप मित्र बनाते कम हैं पुराने मित्र भी आपके शत्रु हो जाते हैं। खैर... आप से क्या कहूँ आपने तो इस जले दूध को अनेक बार पिया होगा। आपकी संपादकीय प्रतिभा से परिचित हूँ अत: आश्वस्त हूँ कि हिन्दी भाषा और साहित्य का रचनात्मक एवं निष्पक्ष चिंतन का मंच होगी यह पत्रिका। आपके इस चुनौतीपूर्ण कदम का स्वागत करता हूँ और बिना किसी अपेक्षा के आपको अपने सहयोग का आश्वासन देता हूँ। मेरी शुभकामनाएँ।

-प्रेम जनमेजय,
संपादक व्यंग्य यात्रा

****

विशेष गर्व का विषय

फ़ेसबुक पर वैश्विक हिन्दी चिन्तन की पत्रिका 'विभोम-स्वर' के अमरीका एवं भारत से एक साथ प्रकाशित होने का समाचार पढ़ा। आपके संपादन में क़रीब सात साल तक 'हिन्दी चेतना' देखते और पढ़ते रहे। आपने 'हिन्दी चेतना' को विश्व भर के हिन्दी पाठकों के लिये अनिवार्य पत्रिका बना दिया था। आपने अपनी फ़ेसबुक की पोस्ट में 'विभोम-स्वर' के उद्देश्यों का ज़िक्र करते हुए यह साफ़ किया है कि आने वाली पत्रिका हिन्दी की अन्य पत्रिकाओं से पूरी तरह से हट कर होगी। यही होना भी चाहिए। भारतीय डायस्पोरा के लिये यह विशेष गर्व का विषय है कि ऐसी पत्रिका की रूपरेखा अमरीका में बनी है और इसे आपका नेतृत्त्व मिलेगा। कथा यू.के. परिवार की ओर से शुभकामनाएँ एवं बधाई!!!

-तेजेन्द्र शर्मा, महासचिव कथा यू.के.
संपादक पुरवाई

****

ध्रुव तारे की तरह जगमगाए

आपके सक्षम संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'विभोम-स्वर' साहित्याकाश में ध्रुव तारे की तरह जगमगाए यही शुभकामना है। मैंने धर्मवीर भारती को तो नहीं देखा पर पिछले कुछ वर्षों से आपको 'हिन्दी चेतना' को जिन ऊँचाइयों पर पहुँचाते हुए देखा है उससे मुझे सदा यही लगता रहा कि मैं भी आज के समय की धर्मयुग से जुड़ा हुआ हूँ। आपको लख-लख बधाइयाँ!

-अभिनव शुक्ल, अमेरिका

****

समय पर प्रभाव

आपके द्वारा संपादित हिन्दी चेतना भी पत्रिका की दुनिया में एक स्तंभ के रूप में शामिल है। नि:संदेह आने वाली पत्रिका 'विभोम-स्वर' भी समय पर प्रभाव डालने में अव्वल रहेगी.....

-संजय कुमार अविनाश

****

बहुत-बहुत बधाई

हिन्दी के प्रचार-प्रसार के प्रति आपके लगातार किए जा रहे प्रयासों के लिए एवं समर्पण के लिए हम सभी बहुत आभारी हैं। यह पत्रिका प्रारम्भ करने के लिए बहुत-बहुत बधाई स्वीकार करें।

-राकेश कुमार शर्मा

****

ढेर सारी शुभकामनाएँ

इस नए अभियान के लिए आप को कोटि-कोटि बधाई! मुझे पत्रिका का नाम बहुत अच्छा लगा 'विभोम स्वर'। अपना मन्तव्य और उद्देश्य स्पष्ट करता है। प्रभु आप का मार्ग प्रशस्त करे और आप विश्व भर में हिन्दी के स्वर को गुँजायमान कर सकें। आप का अथक परिश्रम और उत्साह अवश्य इसे क्षितिज-पार ले जाएगा। मेरी ढेर सारी शुभकामनाएँ!!!

-सुदर्शन प्रियदर्शिनी, अमेरिका

****

हिन्दी का स्वर मुखरित

यह जान कर अपार हर्ष हुआ कि हिन्दी के विश्व व्यापी चिंतन के लिए आप एक नई पत्रिका 'विभोम स्वर' का संपादन करने जा रही हैं। पत्रिका का नाम स्वयं इसकी सफलता का साक्षी है। परब्रह्म ओम सर्व व्यापी है, निश्चित रूप से आपकी पत्रिका समस्त विश्व में हिन्दी का स्वर मुखरित करेगी। विश्वास है, पत्रिका में संकलित विविध रोचक और ज्ञानवर्धक पठनीय सामग्री पाठकों को हिन्दी-साहित्य के विविध

आयामों से परिचित करा सकेगी। सुधा जी, आपने अपने अथक श्रम, योग्यता निष्ठा और तपस्या से 'हिन्दी चेतना' को सफलता के शिखर पर पहुँचाया है अब 'विभोम-स्वर' पत्रिका आपके वर्षों के अनुभव और कुशल संपादन के योगदान से सफलता के उच्चतम शिखर पर पहुँचेगी। आपके नूतन अभियान 'विभोम-स्वर' की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ!!!

-पुष्पा सक्सेना, अमेरिका

****

हिन्दी का वैश्विक स्वर

'विभोम-स्वर' के प्रकाशन पर बहुत बहुत शुभकामनाएँ! आशा है कि यह पत्रिका हिन्दी का वैश्विक स्वर बनकर उभरेगी।

-अरुण चन्द्र रॉय

****

बहुत-बहुत बधाई

'विभोम-स्वर' का हृदय की अतल गहराइयों से स्वागत...प्रकाशन और संपादन के लिए आपको बहुत-बहुत बधाई और शुभकामनाएँ!!!

-मिथिलेश निर्मोही

****

हार्दिक शुभेच्छा

नई साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका 'विभोम-स्वर'की सूचना पा हर्ष हुआ। आशा है यह पत्रिका आपकी मेहनत और लगन से साहित्यिक समाज में अपना सही स्थान बना कर योगदान करेगी। यहाँ अमेरिका की साहित्यिक गतिविधियों को भी यह कुछ बल प्रदान करने में उचित भूमिका का निर्वाह करेगी ऐसी आशा है। आपका प्रयास सार्थक हो। मैं पत्रिका व पत्रिका-परिवार के प्रति अपनी हार्दिक शुभेच्छा प्रेषित करती हूँ और इसकी सफलता की कामना करती हूँ।

शुभ कामनाओं सहित

-कविता वाचक्नवी, अमेरिका

****

हिन्दी पत्रिका का भविष्य उज्ज्वल

'विभोम-स्वर' पत्रिका नए आदर्श और प्रतिमान विकसित करेगी, यह उम्मीद ही नहीं अपितु विश्वास भी है। आपके संपादन में पत्रिका आ रही है, इससे साफ़ संकेत मिल रहे है कि हिन्दी पत्रिका का भविष्य उज्ज्वल ही नहीं आनंदपूर्ण है।

शुभकामनाएँ!!

-डॉ. लालित्य ललित

संपादक राष्ट्रीय पुस्तक न्यास

****

वैश्विक हिन्दी चिंतन

वैश्विक हिन्दी चिंतन एवं अभिव्यक्ति के अक्षर नाद की गूँज से अनुनादित पत्रिका 'विभोम-स्वर' का सम्पूर्ण साहित्यिक जगत् में स्वागत है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पत्रिका अपनी स्तरीय एवं प्रेरक सामग्री से पूरे विश्व के हिन्दी प्रेमियों को आनन्दित करेगी। इसकी सम्पादक सुधा ओम ढींगरा एवं सम्पूर्ण संपादक मंडल को बहुत-बहुत बधाई एवं शुभकामनाएँ!!

-शशि पाधा, अमेरिका

****

व्यग्रता से इंतज़ार

आपके अनुभवी हाथों से 'विभोम-स्वर' का प्रवेशांक आ रहा है.... हमें व्यग्रता से इंतज़ार है..... पत्रिका शीघ्र ही साहित्य जगत् में अपनी पहचान बना लेगी... हमारी और से ढेरों शुभकामनाएँ!!

-विकेश निझावन

संपादक पुष्पगन्धा

****

सेतु का काम करेगी

'विभोम- स्वर' पत्रिका के लिए कोटिश; शुभकामनाएँ ! आशा करता हूँ कि यह पत्रिका हिन्दी साहित्य-जगत् के नए-पुराने रचनाकारों को जोड़ने में सेतु का काम करेगी। शोधार्थियों के लिए भी इस पत्रिका का विशेष महत्त्व रहेगा। जितनी अधिक पत्रिकाएँ होंगी , उतना ही अधिक हिन्दी का प्रचार-प्रसार होगा। व्यापक दृष्टिकोण अपनाते हुए भारत की अन्य भाषाओं के साहित्य को भी समय-समय पर पाठकों तक पहुँचाया जाएगा, ताकि विश्व भर के लोग भारतीय साहित्य की समृद्धि से परिचित हो सकें।

मंगल कामनाओं के साथ

-रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

****

शुभकामनाएँ

यह पत्रिका भी हिन्दी चेतना की तरह सफल होगी, शुभकामनाएँ!

-गिरीश पंकज

संपादक, सद्भावना दर्पण

****

अशेष शुभकामनाएँ

पत्रिका प्रतीक्षित थी, आ. सुधा जी.. हार्दिक बधाई एवं साहित्य संवर्धन के अथक प्रयास के लिए अशेष शुभकामनाएँ!

-सौरभ पाण्डेय

****

सतत साधना सराहनीय

हिन्दी के प्रति आपकी निष्ठा एवं उत्कर्ष हेतु सतत साधना सराहनीय है। विभोम-स्वर के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ!

-शकुंतला बहादुर, अमेरिका

****

नए आयाम स्थापित करे

विभोम-स्वर नई पत्रिका के प्रवेशांक के प्रकाशन के बारे में जानकारी मिली। आप बरसों से अपने लेखन और संपादन से हिन्दी-संसार को जोड़े हुए हैं। आप द्वारा संपादित यह पत्रिका नए आयाम स्थापित करेगी। सभी विधाओं को इस पत्रिका के माध्यम से विस्तार मिलेगा। शुभेच्छु

-डॉ. सतीशराज पुष्करणा

****

लेखकों से अनुरोध

'विभोम स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फाइल अथवा वर्ड की फाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीएफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें।

-संपादक

डॉ. हर्षबाला शर्मा, इन्द्रप्रस्थ कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफ़ेसर के पद पर कार्यरत हैं। उन्होंने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न अकादमिक कार्य किए है, हाल ही में (वर्ष 2014) लौजैन विश्वविद्यालय, स्विट्ज़रलैंड में बतौर विज़िटिंग प्रोफ़ेसर उन्हें आमंत्रित किया गया। उनकी विशेष रुचि भाषा विज्ञान और नाटक के क्षेत्र में है तथा यू.जी.सी. प्रदत्त वृहद शोध परियोजना के अंतर्गत वे नाटक के भाषा विज्ञान के समाज-मनोभाषा वैज्ञानिक विश्लेषण पर कार्य कर चुकी है। उन्होंने भाषा और औपनिवेशिकता विषय पर राष्ट्रीय सेमिनार का सफल आयोजन वर्ष 2011 में किया। विश्वविद्यालय में सर्वोच्च अंक प्राप्त करने हेतु उन्हें मैथिली शरण गुप्त सामान और सावित्री सिन्हा स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया। वर्ष 2009 में प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. ए.पी.जे अब्दुल कलाम के हाथों उन्हें विशिष्ट शिक्षक सम्मान प्राप्त हुआ। उनकी प्रमुख पुस्तकों में भारतीय साहित्य भाषा, मीडिया और संस्कृति, समकालीन हिंदी नाटक, सांझी सांस्कृतिक विरासत के आईने में भारतीय साहित्य तथा 21वीं शती औपनिवेशिक मानसिकता और भाषा शामिल है। अभी वर्ष 2015 में उन्हें अंतर्राष्ट्रीय सम्मलेन के अंतर्गत शिक्षण पद्धति पर चर्चा करने पर बेस्ट पेपर अवार्ड से सम्मानित किया गया। अभी फिलहाल वे कहानी और कविता लेखन कर रही है।

अजपा जाप

डॉ. हर्षबाला शर्मा

'16 बरस की बाली उम्र को सलाम..ओ यार तेरी पहली नज़र को सलाम..' जैसा गीत सुनते-सुनते मान ही लिया जाता है कि बस यही उम्र है और यही पल जब प्यार हो सकता है ...गाड़ी पकड़ में आ गई तो ठीक वरना प्लेटफार्म पर खड़े-खड़े ज़िन्दगी तो बीत ही जाती है। इस उम्र का प्रेम देह की ओर बहुत खींचता है। पकड़े जाने का डर और रहस्य को जान लेने की इच्छा इस उम्र के मोड़ पर आकर तीव्र हो जाती है जैसे वीणा के मधुर-मधुर बजते तार झंकृत हो उठे हैं...सम की ताल रागों के भीतर समा जाना चाहती है और नाच उठना चाहती है... ''धा..तिर किट धा...धा तिर किट..''

राधिका की स्थिति इससे बहुत अलग न थी। देश के हालात और मन के हालात कभी एक हुए है भला..पर अभी का समय कुछ और ही था। हर आदमी देश के नाम पर लहू बहाने और शहीदी का जामा पहनने के लिए तैयार दिखाई देता था। ''सरफरोशी की तमन्ना'' गाते हुए वीर घरों के आगे से गुज़रते तो कुड़ियाँ आहें भर उठती ''हाय एन्ना सोणा गबरू जवान'' फिर आँखें झुका लेतीं। आहों के इस सिलसिले के बीच राधिका की आँखें टिक गई थीं, एक आबनूसी चेहरे और गठीले शरीर के जवान पर! सामने के बरांडे से लगे नलके को चलाकर सबको पानी पिलाता जवान जब हैडपंप चलाता तो उसकी जवानी से भरी नसें तिड़कने लगती और राधिका का बदन! जलते अंगारों से भरी राधिका की जवानी पर हैंडपंप का पानी शोले भड़का देता पर जवान का ध्यान तो उस ओर था ही नहीं!

'बुल्ले शाह का गीत गाता जवान! सुबह की परभाती में केसरिया बाना पहन झूमता जवान! मौत के हुँकारे लगाता जवान! जब-जब हैडपंप पर आता, उसकी कमीज़ के तिड़कते बटन और धूप में बहता पसीना राधिका को भिगो जाते। धूप में तपता गोरा चिट्टा गबरू बाल्टियों पर बाल्टियाँ भरता, गुरुद्वारे पहुँचाता और लौट कर अपने नंगे बदन पर ढेरों कलसियाँ उड़ेल लेता। दो बेशर्म आँखें इसी समय उसके पोर-पोर को घूँट-घूँट पीती और तड़पती।

राधिका ने अब गुरुद्वारे जाना शुरू कर दिया था। ''सतगुरु मैं तेरी पतंग...'' और साखी, रमैनी गाते हुए वाहेगुरु का नाम जाप सुनते हुए भी वो उसे ढूँढ़ा करती। एक अजपा जाप उसके नाम का उसकी देह में बजता रहता। गुरुशरण ! हाँ नाम तो यही था उसका! वह भी कहाँ अनदेखा कर पाया था उसे! नानक नाम चढ़दी कला' कहते-कहते आँख भर ही मिली थी। ठीक से राम-राम भी कहाँ हुई थी और राधिका की देह जल उठी.. छि: गुरुद्वारे में कहाँ सुहाता है ये सब! ...

चल पड़ी राधिका फिर से अपने खिड़की की ओट में छिपने के लिए। दो आँखों को अब दो और आँखों का सहारा मिल गया था। मेरा रंग दे बसंती चोला..' गाते हुए गुरुशरण

अब राधिका की पनाह बन गया था।

''सपनो का रंग कौन सा होता है...'' ये ही तो पूछा था गुरुशरण ने उससे पहली बार उसकी देह को छूते हुए। और सतरंग झिलमिला उठे थे राधिका की आँखों में। देश के लिए मरने-मिटने की कसमें खाता वीर अब राधिका का था, ये बात ही भर देती थी उसे अन्दर से पूरा का पूरा। जैसे अचानक मिल जाए कही से कारूँ का खज़ाना! दिल तो करता है कि सब को बता दें.. पर डर भी लगता है... हाय रब्बा जे छिन लित्ता ते!

और छिन ही गया गुरुशरण गुरुद्वारे से ही! अपनी ही नज़र लग जाती है। आँखों से झरते-झरने को छक कर पी रही थी राधिका और गुरुद्वारे में चल रहा था जाप! राधिका की आँखें आज भी नहीं भूल पाती उस दृश्य को! चारों ओर से गुरुद्वारे को घेर लिया था उन लोगों ने। राधिका आज भी नहीं जानती कि वो लोग कौन थे और क्यों हुआ गुरुद्वारे में कत्लेआम! बच्चों और औरतों को बाहर निकाल कर सड़कों पर धकेल दिया गया था और सारे आदमियों को सरेआम गुरुद्वारे में ही भून दिया गया था। लाल-लाल बहते खून में ढूँढ़ती रही थी राधिका गुरुशरण के खून को! और कटे-फटे शरीरों में ढूँढ़ रही थी गुरुशरण के शरीर को! वही शरीर जिससे लिपट कर उसने ज़िन्दगी के एक नए रहस्य को समझा था... न वो शरीर उसे मिल पाया था..न ही उसके लहू के कतरों को अलग कर पाई थी वो...

असल में ज़िन्दगी और मौत का सिलसिला रब के हाथों लिखा जाए तो भी सबर कर ले उसका बन्दा! पर उन लोगो के हाथों से हुई मौत पर कैसे सबर रखें जिनके न नाम पता न शक्लें! न जाने कैसे इस पूरी पौध को जंग लग गई थी। आज़ादी के मतवाले इतने लोगों को मौत के घाट उतारने वाले हमसूरती लोग। गुरुशरण जैसे कितने ही देश की आज़ादी के लिए मतवालों की तरह लड़ रहे थे और ये अंग्रेज़ न जाने कैसे समझ गए थे कि जयचंदी सूरते भी हमारे बीच से ही निकलेंगी! ऐसे जयचंदों को, जो शक्लोसूरत में हमारे जैसे ही है, कब और किस घड़ी में खरीद लिया गया, कि अपनों को ही मारते

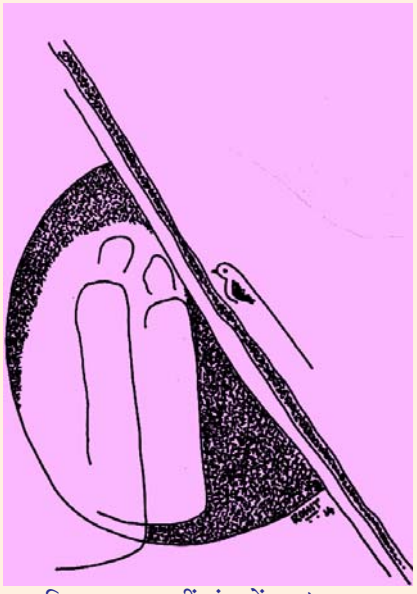

हुए दिल दहला नहीं कंजरों का!

राधिका ही नहीं, पूरी कौम दहल गई थी इस कत्लेआम से। स्यापे डालती औरतें और सहमें दुबके बच्चे, लाल-नीली टूटी चूड़ियाँ और आँखों में चुभती सिलाइयों जैसे प्रश्न! कौन सी माँ ने जन्मा था उन दहशतगर्दों को जो अपने ही देश के खरीदारों के हाथों बिक गए! और खत्म कर दी परवान चढ़ती कौम! ''इक वारी जे लौट आंदा पुत्तर, मैं मुल्क वास्ते फिर भेज देंदी औंनू...'' के हुंकारे भारती माँएं ... राधिका देख रही थी और गुम थी।

हर तरफ से आज़ादी के मतवालों के मरने की खबरें तेज़ हो गई थीं। ये वक़्त ही कुछ ऐसा था जब हर बाँका शहीदी का जामा पहनने को ही जैसे घर से निकल रहा था। गर्म दल और नरम दल के बीच की बहसें एक तरफ संजीदा हो रही थीं, वहीं उबलती जवानी जैसे सर पर कफ़न बाँध कर आगे बढ़ रही थी। ''रब राखा...'' कहकर निकलने वाले ये बाँके हर गली और हर सड़क पर मर रहे थे... ''बस ऐस देश दा झंडा इक वारी उच्चा हो जाए...सानू मरन दा कोई अफ़सोस नहीं होणा...''

''जा नी कुडिए... प्यार ते है पर वकत ही होर हो गया है?''।

घुट-घुट कर चीख रही थी राधिका.. और खोई हुई थी उस क्षण में जब पहली बार उसने छुआ था गुरुशरण को...पराई देह इतनी अपनी हो जाती है क्या कि उसके रोप हुए पौधे का इन्तज़ार करने लगे देह भी.... बहुत चीखी और तड़पी थी राधिका पर घरवालों के लिए बच्ची की इस बेवकूफ़ी से निजात पाने का कोई और रास्ता नहीं था शादी के सिवाए...17 साल की इस लड़की के असफल प्रेम के लिए अब कोई अफसराना परिवार आँसू बहाए या ढूँढ़े अपने ही जैसा खानदान जहाँ लड़की का ये दोष छुप जाए! तो परिवार का फैसला अपने ही हक़ में हुआ और राधिका ब्याह दी गई एक बड़े अफसर के बड़े से खानदान में! बड़े अफसर अच्छे हो या बुरे, होते तो अफसर ही है! फिर इश्क और मुश्क तो छुपाए नहीं छुपते। दाइयों के पेट से निकलकर हरजाई हो जाती हैं कहानियाँ! और प्रेम-श्रेम तो होता ही है हरजाई! ''एस कुड़ी ने ते सारे रंग वेखे होए ने..''

नवजोत.. एन्ना वड्डा अफसर हो गया पर व्याह नहीं हो पाया तो बस इसलिए कि अफसरों के खानदान पर अक्सर ये कलंक लग जाते थे कि देश के खरीदारों के हाथों बिक कर ही अफसरी हासिल की जा रही थी। ''वकत-वकत दी गल है जी, कदी देश लई मरन वाल्या नूँ पूजा जांदा सी ते अज....सारयां नू अफसरी चाईदी... कौन देश केड़ा देश... किस टाइम दी गल कर रहे हो तुसी...''

''पर जेड़ा नाई रिश्ता लाया उसने गारंटी ली है.. सच एन्ना वड्डा अफसर! न तेज आवाज में बोलना न गाली गलौच! हर तरह से रिश्ता सुन्दर और सुथणा..''

कोई भी घटना हमारे जीवन पर रोका नहीं लगा सकती। राधिका का भी पेका छूटा और राधिका अफसरी परिवार की बहू बनकर आ गई। राधिका के पति का व्यवहार भी इतना अच्छा था कि उसे कभी यह महसूस ही नहीं हुआ कि कब वह मुस्कराने लगी। नवजोत ने हाथों पर रुई के फाहे की तरह रखा उसे... बस बीच-बीच में ख़बरें मिलती कि फिर कहीं गोली चली है। गोली नवजोत और कई अफसरों ने चलाई, चलवाई और कई गुरुशरण खत्म हो गए! टीसती रहती है याद उँगली पर लगी चोट की तरह। जैसे एक वारी लग जाए और फिर ठीक ही न

हो।

मुल्क आज़ाद हो गया, के नारों के बीच राधिका ने भी देखा था सोणा प्यारा देश दा झंडा.... ''सच किन्ना सोणा देश है मेरा... किन्ना सोणा हैं ए झंडा...'' नवजोत और राधिका एक बिस्तर पर थे और गुरुशरण कान में टहोका देकर कह गया था.. ''ले बण गई तू अफसर दी बीवी पर वेख सारयां ने मिलके ले लित्ती आज़ादी.'' चौंक पड़ी थी राधिका.... शिकायत थी उसके स्वर में.. ''भुल्ल गई मैनू.... हले ते बरस वी नई बितया..''

''दूधों नहाओ पूतों फलो..'' सोणा पुत्तर खेले गोदी विच.. जैसी असीसें सर माथे रख राधिका की गोद में आया था गुरुमुख। गुरुद्वारे मथ्था टिकाने गई तो खो गई किसी पुरानी याद में। पुत्तर नवजोत वरगा लगदा ही नई... फेर किस वरगा.. साल ही ते होया है व्याह नू.... रब भली करे... जैसे न जाने कितने ही प्रश्न आए थे उसके सामने पर हर ताले की एक चाबी होती है जनानियां दे कोल.. जिसदी खबर किसी होर नू नई होंदी... तहखाने में उतर कर देखती है राधिका.. इस ताले की चाबी सुरक्षित तो रखी है न!

बरस बीते...बीतने ही थे... मन के हालत हों जैसे भी पर देश के हालात इन पच्चीस बरसों में बदल गए थे... देश दो बड़ी लड़ाइयाँ देख चुका था। मन उखड़ रहे थे.. ऐस वास्ते जान दित्ती सी साडे बच्यां ने? चारों और से आवाज़ें उठने लगी थीं। गुरुमुख का मन तो बचपन से ही न जाने कैसा था! अफसरी खानदान का बच्चा और दुनिया भर की खुशियों के बीच पला गुरुमुख बस माँ के चेहरे और देश के चेहरे में एकता ढूँढ़ता रहता। याद है राधिका को जब पन्द्रह बरस के गुरुमुख ने एक दिन कहा था.. ''माँ तू कहती है कि देश आज़ाद हो गया फिर ये भारत माता मेरी किताब में रो क्यों रही है माँ?'' तू भी तो रोती है माँ। बता मैं क्या करूँ कि तू भी हँसे और ये भी! नवजोत ने पहली बार उस दिन शक से देखा था राधिका को! और हॉस्टल भेज दिया गया था गुरुमुख। ऐसा हॉस्टल जहाँ से बड़े अफसर निकलते हैं। ऐसी फालतू बातों के लिए कोई जगह नहीं है वहाँ.... नवजोत का पुत्तर उससे भी बड़ा अफसर बनेगा... पहली बार उस झुँझलाए अफसर को देखा था राधिका ने पति में!

कुछ नहीं कहती है राधिका। जवानी की पहली इबारत जो उसने महसूस की थी, उसके हाथ से ऐसे छिन गई थी कि फिर सब कुछ पाकर भी खोती ही चली गई। वो देख रही थी कि देश भी खो रहा था उसके सामने से। गुरुशरण ने जो कल्पना की थी वो नहीं था ये देश जहाँ अब अख़बार उठाते हुए हाँथ काँप जाते थे उसके। शांति की असफल होती वार्ताएँ और दोस्त कहे जाने वाले देश की गद्दारी! नौजवान खून फिर उबलने लगा था। कभी-कभी हिन्दी और पंजाबी की कविताएँ पढ़ती राधिका के हाँथ काँप जाते। क्या हो रहा है देश के नए खून को! क्यों हर तरफ सब कुछ टूट रहा है। आज गुरुशरण होता तो? क्या करता वो? कभी-कभी टोहका मारता रहता है वो अन्दर से..सारी कुण्डियों को बंद करने के बाद भी! उस दिन हरिवंश राय बच्चन की कविता पढ़ते हुए खो गई राधिका ...

फैलाया था जिन्हें गगन में/ विस्तृत वसुधा के कण-कण में/ उन किरणों पर अस्ताचल पर पहुँच लगा है सूर्य सँजोने/ साथी साँझ लगी अब होने...मिट्टी से जिसे बनाया/ फूलों से था जिसे सजाया/ खेल घरोंदे छोड़ पथों पर, चले गए हैं बच्चे सोने/ साथी सांझ लगी अब होने..'' खो गई राधिका अनेक यादों में। कहाँ खो रहे हैं बच्चे...सपनों में या सपनों के टूटने में! मेरा जवान देश!

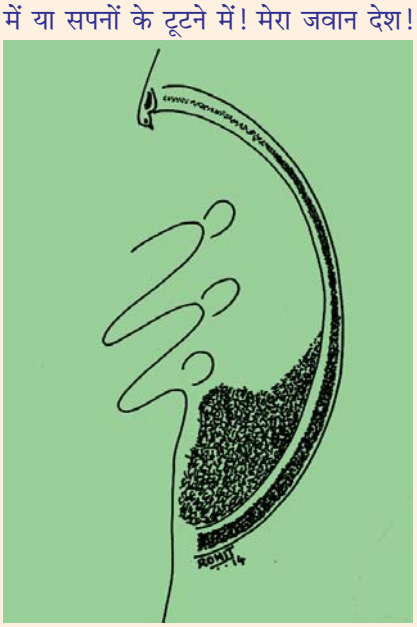

और लाल होती धरती! खो जाती है राधिका...स्मृति आकर सेंध लगाती है कभी-कभी। कोई गुलदस्ते में पिरोई सांक जैसा छिपे-छिपे आकर टोह जाता था उसे! जैसे फूलों के बीच में अचानक उँगली में लग जाए एक काँटा और चीख भी न निकल सके। बस घुट कर रह जाए मन के भीतर चीख भी और आवाज़ भी...

अतीत चिपक जाता है हमसे जोंक जैसा और झटक कर अलग भी कैसे कर सकते है हम! दरवाज़े पर घंटी बजी जिससे राधिका का ध्यान टूटा। सामने पोस्टमैन खड़ा था। चिट्ठी उलट-पलट कर देखी तो राधिका की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। गुरुमुख आज घर लौट रहा था और साथ में थी नई नवेली सुखबीर। पाँच साल बाद घर लौट रहा था घर उसका बच्चा। अफसर की बीवी राधिका आज अचानक फिर बन गई थी माँ और लग गई थी गुलाब की क्यारियों की कांट-छांट में! सामने बैठकर, खड़े होकर, बैचैनी से टहलते हुए उसने गुलाब की कलमें तैयार कराई थीं। कितना इंतज़ार करना पड़ता है गुलाब का खिलकर तैयार होने के लिए! ये इंतज़ार उसकी किस्मत में लिखा है। उसके मन में खुब गया है इंतज़ार। गुरुशरण की देह से लिपटने का इंतज़ार! उसकी देह को आख़िरी बार देख लेने का इंतज़ार! आज़ादी का इंतज़ार! गुरुमुख के लौटने का इंतज़ार! और अब ये गुलाब खिलने का भी इंतज़ार!

याद है उसे! गुरुशरण के साथ एक बार ही तो हमबिस्तर हुई थी और शर्माते गुलाब खिल आए थे उसके गालों में! गुरुशरण सब छोड़कर एक कागज़-कलम लेकर बैठ गया था। शर्माते हुए उसने पूछा था ''क्या कर रहे हो? मेरे लिए प्रेम पाती?''

''हाँ रे तैन्नू किस तरह पता!'' और बनाकर दिया था उसने एक चेहरा ''वेख मेरा पुत्तर, माँ वरगा सोणा!''

राधिका हँस कर रह गई थी और छिपा दिया था उस चेहरे को संदूक की चिटकनी लगाकर! सबकी नज़र से बचाकर ले आएगी उसे अपने भीतर हूबहू!

गुरुमुख हूबहू उतर आया था उसके भीतर ...मन में भी और गोद में भी। उसे

देखती रह गई थी नर्से भी ''गोरा चिट्टा माँ वरगा!'' पर राधिका जानती थी कि 'किस वरगा ...' चुपके से हाथ में मरोड़े कागज़ को झाँक कर देख लिया था उसने। और गुरुमुख का सोणा चेहरा सिमट आया था उसकी गोद में।

नन्हा गुरुमुख सबकी जिज्ञासा का केंद्र था। ''मेरा रंग दे बसंती चोला...'' गाता हुआ जब गुरुमुख अफसरों के परिवार में नाचता और झूमता तो राधिका की छाती गर्व से फूल उठती। नवजोत राधिका को बहुत चाहता पर उसके सामने गुरुमुख कभी ये गीत नहीं गाता था। बिना कहे भी भाँप जाते है बच्चे घर के भीतर उठ रही भाप की खुशबू! पर खुशबू टिकती कहाँ है देर तक और कुछ भी टिकता कहाँ है वैसे जैसे हम चाहते हैं। गुरुमुख किसी और ही दुनिया का था शायद। पन्द्रह का होते न होते भेज दिया था उसी हॉस्टल में जहाँ से पापा और दादा पढ़कर आए थे और मज़बूत अफसर बनकर निकले थे और मन मसोस कर रह गई थी राधिका। पन्द्रह बरस का गुरुमुख रोता हुआ गया था उसके सामने से! ''न छड कर नहीं जाना अपनी हीर वरगी माँ नू''।

गुरुमुख उसके अन्दर का बहता सोता! चला गया वह भी गुरुशरण की तरह! नहीं गुरुशरण की तरह नहीं, पर वो लौटना ही नहीं चाहता था इस अफसरी परिवार में! कहता था माँ तू हीर है मेरी पिछले जन्म की, पर जिसके हाथ पड़ गई, उससे दिल ही नहीं लगता मेरा... राधिका उसके घुँघराले बालों में तेल लगाती तो हाथ पकड़ कर देखता रहता देर तक! पगला कहीं का! पर न जाने क्यों उसका मन कहीं टिकता ही नहीं था!

वही गुरुमुख आज आ रहा था अपनी इस जन्म की हीर के साथ! सुखबीर उसके पीछे खड़ी थी जिसे देख राधिका के कलेजे में ठंड पड़ गई। दोनों के ठीक पीछे कोई और भी था जो मुस्कुरा रहा था... 'वेख बलिये, मेरा सोणा...हैं न माँ वरगा'

पर राधिका अभिशप्त है। कुछ भी उसके जीवन में निरंतर ठहर नहीं सकता! हवा के झोंके की तरह आया और चला गया गुरुमुख भी! जबान कड़वी है राधिका की। कैसे सोच लिया था उसने पहले ही कि चला जाएगा ये भी गुरुशरण की तरह! स्मृतियाँ बहुत तीखी होती है और मीठी भी! आहट भी पनीली होती है। पानी सी छलकती...कभी भर देती है मन को सुखद तरंग से तो कभी छलक जाती है आँख से! बहुत देर से पता चला कि गुरुमुख किसी गुप्त दल का सदस्य हो गया था...सुखबीर बताती है कि न जाने क्यों देश और देश की समस्याएँ उसे ज़्यादा ही उद्वेलित करती थी। ज़्यादा ही सपनों में जीता था गुरुमुख! हर वक़्त बदलाव की बात करता था। देखता था क्रान्ति के सपने! मानता था बदल देगा पूरे समाज को! जीते नहीं ऐसे लोग लम्बी उमरे..। पूछती है सुखबीर बार-बार ''इस घर में कैसे आ गया गुरुमुख! अफसरों के ठाट-बाट से भरा यह घर! और फूल से बने गुरुमुख का ऐसा दिल!...कहता था बाँहे डाल कर गले में कभी-कभी...उड़ जाऊँगा हवा में ..गर ख़त्म हो जाएँगे सपने!... फिर हँसता था... तू चिंता न करना , मैं लौट आऊँगा बलिये..''

मुग्ध सी सुनती है राधिका.. ''ऐसा कहता था गुरुशरण?'' टोकती है सुखबीर... ''गुरुशरण नहीं माँ गुरुमुख'' माँ के मन में गड्डमड्ड हो गए हैं दोनों!

अजपा जाप जपती है सुखबीर! ''पता है माँ ..गुरुमुख फिर आने वाला है...तुझे पता है मेरे अन्दर जी रहा है वो। अजपे जाप की तरह। पता है माँ मेरे अन्दर के संदूक में चिटकनी लगाकर रख गया है वो अपनी तस्वीर और वो तस्वीर आएगी हूबहू ...वैसी ही....'' माँ देखती है बड़ी मज़बूत है ये सामने खड़ी दुबली-पतली सुखबीर...

और फफक पड़ती है माँ के अन्दर बैठी राधिका। किसके लिए ? गुरुशरण के लिए...गुरुमुख के लिए...इस दुबली-पतली लड़की के लिए...या...इस अंतहीन प्रेम के लिए....?

वीणा बज रही है वैसे ही...ताल के साथ....ता धिन धिन ....कौन सा अजपा जाप जपे राधिका कि बच जाएँ गुरुशरण.. गुरुमुख ...और .....सपने....

****

ग़ज़ल

अनिरुद्ध सिन्हा

जिन परिंदों के नए पंख निकल जाते हैं
उनके उड़ने के भी अंदाज़ बदल जाते हैं

हम नहीं और कोई लोग यहाँ होंगे जो
हाथ की चंद लकीरों से बहल जाते हैं

कब तलक आप यहाँ सिर पे रखेंगे सूरज
धूप में जिस्म क्या जज़्बात पिघल जाते हैं

लोग मुट्ठी में समुंदर जो लिए रहते हैं
पाँव उनके भी कभी रेत पे जल जाते हैं

हम तो दीवार शराफ़त की लिए बैठे हैं
बंद रखते हैं ज़ुबाँ दर्द में ढल जाते हैं

हम तो हर बार भरोसे के तलबगार रहे
एक तुम हो कि हवाओं में गिरफ़्तार रहे

सूर्ख फूलों की तरह जिस्म जहाँ बिकते हों
कौन कहता है कि भारत में वो बाज़ार रहे

हम अभी से ही यही सोच लें तो बेहतर है
धर्म या ज़ात सियासत का न औज़ार रहे

सरहदी क़ौम को जाकर ये कोई कह आए
ग़म सही दिल में मगर हाथ में तलवार रहे

भीग जाएगा बदन और उड़ेगी खुशबू
खिड़कियाँ खोल न बारिश की जहाँ धार रहे

.गुलज़ार पोखर ,मुंगेर
(बिहार)811201
मोबाइल-09430450098

नीली तितली

भावना सक्सैना

कॉटेज से बाहर निकल अलसाई सुबह में पाँव आप ही जंगल की ओर बढ़ गए, कुछ दूर पर ही वह खुला मैदान था; जहाँ से झील के पार उगता सूरज बहुत सुन्दर दिखलाई पड़ता था। ईहा उस ओर चल पड़ी, वहाँ पहुँची तो देखा आकाश अभी सलेटी ही था, झील पर धुंध गहरी थी लेकिन पक्षियों कि चहचाहट, पत्तियों के बीच से गुज़रती हवा की सरसराहट, पेड़ों से हवा के साथ नीचे उतरती धुंध एक अद्भुत अहसास दे रही थी, नम हवा अनावरित बाजुओं को सहला रही थी, पर शीतलता हृदय में उतर रही थी। कितना कोमल एहसास है प्रकृति की हर वस्तु में! अनंत सुख का एहसास, ज़िन्दगी की भाग दौड़ से दूर, टेलीफ़ोन की घंटी से परे। न रेडियो का शोर, न टीवी के बदलते सुर, न वाहनों की चें-पें, न दफ्तर पहुँचने की मारामारी और न देरी की खिसियाहट। बस एक अनमोल शांति। समय तो यहाँ भी चलता है, बँधा हुआ ही चलता है, वही चौबीस घंटे तो मिलते हैं इन्हें भी, फिर भी कोई टकराहट नहीं, शायद इसलिए की हर जीव व हर वस्तु एक दूसरे के प्रति सहनशील है। विशेषकर पेड़ जो शायद धैर्य के सबसे बड़े प्रतिमान हैं, जो मानव का हर वार सह कर भी अपनी ओर से सर्वश्रेष्ठ प्रदान करते हैं। घास जो दिन भर रोंदी जाकर भी सर उठाए रहती है, डटे रहने का उससे अच्छा उदाहरण हो ही नहीं सकता....ईहा जब भी मायूस होती है आकाश की ओर नहीं घास की ओर देखती है, सुबह सैर पर जाती है और उसका नम स्पर्श अनुभव करती है जो उसे एक नवीन ऊर्जा प्रदान करता है। उसकी पुरानी आदत है। वह जब भी परेशान होती है तो एक लंबी सैर पर निकल जाती है, रास्ते के पेड़ों, पक्षियों, गुनगुनाती हवा का स्पर्श एक अजीब सी शांति प्रदान करता है, यह समझाता हुआ सा कि जीवन परेशानियों से ऊपर है। प्रकृति की सहनशीलता उसे सदैव प्रेरित करती रही है।

चलते-चलते उसने महसूस किया कि सूखे पत्तों पर पड़ता हर कदम चरमराने की ध्वनि उत्पन्न कर रहा था, वह रुक गई... रुकने पर अपनी साँसों का स्वर भी सुन पा रही थी वह और जंगल के सरोकार में कोई व्यवधान न हो इस विचार से वहीं पर एक गिरे हुए पेड़ पर बैठ गई, असीम शांति के बीच उस पल ईहा का मन उस निर्जीव पेड़ का अंश हो जाना चाह रहा था। विचारों में डूबती उतरती, धीरे धीरे आसमान के सलेटी रंग को हल्का होते देख रही थी और जैसे जैसे थोड़ा उजाला फ़ैल रहा था जंगल में नीचे की ओर उतरता रास्ता साफ़ हो रहा था। वह नीचे उतरती पगडण्डी को देखती रही जो कुछ आगे जाकर दो रास्तों में बंट रही थी..... उसे लगा यह पगडण्डी उसके वैवाहिक जीवन की तरह है जहाँ वे दो प्राणी प्रतिबद्ध हो चले तो साथ-साथ काफी दूर तक परम समर्पित रहे, किन्तु रास्ते में न जाने क्या-क्या अनावश्यक उग आया, जिसे वह समय रहते साफ न कर सके और धीरे-धीरे इतना फ़ैल गया कि एक ही सीमा में वे दो जंगलों में बँट गए और भटकते रहे। उसने समझा

भावना सक्सैना भारत के गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग में कार्यरत हैं। साढ़े तीन वर्ष तक सूरीनाम स्थित भारत के राजदूतावास में अताशे (हिन्दी व संस्कृत) पद पर प्रतिनियुक्त रह कर भावना जी ने वहाँ हिन्दी का प्रचार-प्रसार किया। आपके प्रोत्साहन से सूरीनाम के हिन्दी लेखकों में नव ऊर्जा का संचार हुआ। आपने सूरीनाम में हिन्दुस्तानी, भाषा, साहित्य व संस्कृति नामक पुस्तक लिखी है और सूरीनाम साहित्य मित्र संस्था द्वारा प्रकाशित प्रथम कविता संग्रह एक बाग़ के फूल और कवि श्री देवानंद शिवराज के काव्य संग्रह का संपादन किया।
ईमेल: bhawnavsaxena@gmail.com

था चुप रहना हर समस्या का समाधान है पर वास्तविकता में ऐसा नहीं है, चुप रहना विवाद को टाल सकता है लेकिन मन के अंदर एक गुबार भर देता है, आपस में बातचीत कर अपने मन की कह लेना इसका बेहतर विकल्प होता है। वे दोनों ही ऐसा न कर सके जिसके कारण अनजाने ही कितने काँटे उग आए और तरुण के व्यावसायिक और उसके कार्यालयी व घरेलू दोहरे दायित्वों ने उन्हें इतना उलझा दिया कि कभी इन अनावश्यक खरपतवारों की सफाई को न तो आवश्यक समझा और न ही प्रयास किया कि एक दूसरे के प्रति उठ रहे गिलों को गलाया जाए। जीवन चलता रहा, जीने की उत्कंठा मरती रही। कोई खास परेशानी भी न थी, उसने भी सोचा शायद सबकी ज़िन्दगी ऐसी ही होती होगी, वक्त के साथ फ़ूलों के रंग भी तो फीके हो जाते हैं, विवाह में तो अपेक्षाएँ जुड़ी रहती हैं जो निरंतर बढ़ती हैं और ऊष्मा को सोखती रहती हैं फिर उसका तो विवाह भी .....

इस युग में पश्चिमी देशों में माता-पिता की पसंद और मर्ज़ी से विवाह आम नहीं है किंतु उसने अपनी माँ के सुझाव पर तरुण से विवाह किया, वह चाहती तो माँ को मना कर सकती थी पर न तो तरुण में कोई कमी नज़र आई और न ही तब तक किसी और ने उसके जीवन में स्थान बनाया था। वह एक हिंदुस्तानी है, हिंदुस्तानियों के लिए परिवार आज भी महत्त्वपूर्ण होता है, ईहा के लिए तो विशेष रूप से है क्योंकि उसने बिखरे परिवार का दर्द सहा है। जो बचा रहा है उसे संजोने को प्रयासरत रही है। उसने वक्त की बेरहमी को जिया है और मरुस्थल में पड़ने वाली वर्षा के समान एक-एक बूंद प्यार को सोखा है, बचपन से।

बचपन के दर्द भुलाये नहीं भूलते हैं....।

उसे याद है वह करीब सात वर्ष की रही होगी जब अचानक एक रोज़ उनकी दुनिया बदल गई, पिता अपने कुछ मित्रों के साथ आमोद-प्रमोद के लिए नौका पर निकले थे, यूँ कम ही उनके बिना जाते थे किन्तु मित्र का जन्मदिन होने के कारण उनके आठ मित्रों ने मिलकर यह कार्यक्रम बनाया था और माँ ने ही कहा था कि उन्हें अपने मित्रों का मन रखना चाहिए। वह साथ जाने की ज़िद करने लगी तो पिता ने वादा किया था कि अगले सप्ताहांत पर वह उसे और माँ को भी नौका विहार के लिए ले जाएँगे, किन्तु वह कभी उस वादे को पूरा न कर पाए। वह यात्रा उनकी अंतिम यात्रा बन गई थी। संध्या समय वापसी के दौरान क्या हुआ यह ठीक-ठीक बताने वाला तो कोई बचा ही न था, हाँ अनुमान और सरकारी रिपोर्टों के अनुसार उनकी तेज़ गति से चलती नौका सूरीनाम नदी के मध्य स्थित एक सोना छानने वाली बड़ी नौका से टकरा गई थी। टक्कर इतनी तेज़ थी कि नौका में सवार आठों व्यक्ति काल के गाल में समा गए। देश की सबसे बड़ी खबर उनके जीवन की सबसे बुरी खबर बन गई थी। वह माँ और अपने छः माह के छोटे से भाई के साथ बड़ी सी दुनिया में अकेली रह गई थी। माँ सिर्फ रोती थी, सारा आंटी, उसकी माँ की बचपन की मित्र, नन्हे शरन को अपने घर ले गई थी। पिता के कॉफ़िन को जब घर लाया गया, कितने सारे लोग आए थे सब उसके सर पर हाथ फेरते थे और कहते थे - ''बेटा माँ का ध्यान रखना''...उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह माँ का ध्यान कैसे रखेगी? अब तक तो माँ ही उन सबका ध्यान रखती थी। कुछ समय के लिए वक़्त जैसे रुक गया था.....सूने-सूने वीरान दिन थे, गुमसुम। और वही दिन थे जब उसने पौधों से बातें करना सीखा था, सारा आंटी ने उसे एक छोटे से गमले में चार पंखुड़ियों के फूलों वाला फायलोबी का पौधा लाकर दिया था। उनका कहना था कि यदि ईहा फायलोबी का ध्यान रखेगी तो वह बहुत बड़ा हो जाएगा और खूब सुंदर फूलों के बड़े-बड़े गुच्छों से भर जाएगा। उन गुच्छों में पाँच पंखुड़ियों के फूल भी होंगे, और जब उसकी फायलोबी में पाँच पंखुड़ियों वाले फूल खिलेंगे तो उन पर सुंदर-सुंदर तितलियाँ आएँगी, उनकी बातों ने उसे विस्मय से भर दिया था और उसने पूछा - क्या नीली तितली भी? सारा आँटी ने कहा - ''ऑफ कोर्स डार्लिंग''। लेकिन यह कहते हुए उनकी आँखों में एक अजीब सा खालीपन दिखा था ईहा को, जैसे उन्हें खुद अपनी ही बात पर भरोसा न हो। बालक मन शीघ्र उस उदासी से परे नीली तितली को खोजने लगा था। धीरे-धीरे पौधा पनपने लगा था। कुछ बड़ा हुआ तो सारा आँटी ने कहा उसे बाहर आहाते में लगा दो..... शायद वह समझाना चाहती थीं कि बड़े होने का एक अर्थ बाहर जाना भी है। ईहा बहुत नहीं समझी थी, तब भी नहीं जब उसके दसवें जन्मदिन पर सारा आँटी ने कहा - ''अब तुम बड़ी हो गई हो ईहा''। इन शब्दों का अर्थ बाद में समझी थी वह। सुंदर से कॉटेजनुमा घर के चारों ओर भांति-भांति के सदाबहार पौधे थे, उन्हीं के बीच उसने फायलॉबी रोप दिया था।

शायद सारा आंटी ने एक नीली तितली ईहा की माँ की आँखों में भी छाप दी थी, माँ अब फिर से अपना ध्यान रखने लगी थी और खुश रहने लगी थी, माँ खुश रहती तो उन्हें घुमाने ले जाती और कभी-कभी सारा आँटी और उनके भाई राजेश भी मॉल में मिलते..... दिन कुछ हलके होने लगे थे। राजेश अंकल घर आते तो अच्छा लगता शरन उनसे बहुत हिल गया था, वह नन्हा बच्चा शायद उनमें पिता तलाश रहा था किंतु ईहा जानती थी कि पिता कभी नहीं आएँगे और हल्के होते-होते दिन अचानक उसके जीवन में कालिमा भर गए। एक दिन शरन ने राजेश अंकल को पापा कह दिया... ईहा जोर से चीखी - ''शरन! पापा नहीं अंकल, राजेश अंकल!!''

माँ ने उसे प्यार से बुलाया और समझाने लगी, ''बेटा शरन छोटा है, उसे पापा चाहिए'', ईहा सुबक उठी थी - ''माँ पापा तो मुझे भी चाहिए, मिल सकते हैं क्या?''

''बेटा तुम चाहो तो राजेश के रूप में तुम्हें पापा मिल सकते हैं''।

''और मैं न चाहूँ तो!!!''

उस समय माँ चुप हो गई थी, बाद में कई बार सारा आँटी नें उसे प्यार से बहुत समझाने का प्रयास किया किंतु वह राजेश अंकल को पिता मानने के लिए तैयार न हुई और उसे किंदरहुइस में जाना पड़ा। किंदरहुइस! डच भाषा में बालघर, एक ऐसा स्थान जहाँ वे

बालक रहते हैं जिनके रहने का कोई और आश्रय नहीं, सभी धार्मिक संस्थाओं के संरक्षण में एक किंदरहुइस रहता है, इस देश में विभिन्न जातियों का ऐसा मेल है कि अलग होते हुए भी एक सामासिक संस्कृति विकसित हो गई है, जिसमें कई अच्छाइयाँ हैं तो अत्यधिक उन्मुक्तता का एक ऐसा खोट है, जिसके कारण न जाने कितने बालक अपने होने का उत्सव नहीं मना पाते। जाति धर्म से हटकर कितनी ही सूरीनामी युवतियों की जीवन शैली बिंदास है, शराब, सिगरेट तथा मुक्त संबंधों के लिए यहाँ के समाज में समान स्वतंत्रता है । पहनावे की यूरोपीय शैली से संपन्न इस देश में रहन-सहन यूरोपीय और अमेरिकन है। जीवन यापन की स्वतंत्र पद्धति के कारण मुक्त संबंधों का चलन है और इसीलिए लगभग पाँच लाख की आबादी वाले इस देश में कई अनाथालय हैं, जहाँ वे बालक रहते हैं; जिनके माता-पिता व्यक्तिगत, सामाजिक अथवा आर्थिक कारणों से उनके भरण-पोषण का उत्तरदायित्व नहीं सँभालना चाहते। आर्यसमाज के उस किंदरहुइस में रहने से एक अच्छी बात यह हुई कि उसने हिन्दी सीख ली और पाँचवा स्तर पार करते ही गुरुजी ने अपनी हिन्दी कक्षा की ज़िम्मेदारी उसे सौंप दी। माँ नियमित मिलने आती..... पहले उसे माँ पर बहुत गुस्सा आता था, उम्र जैसे-जैसे बढ़ी परिपक्वता भी बढ़ी और उसने माँ को माफ कर दिया पर उनके साथ रहने न जा सकी। माँ को माँ के रूप में न देख वह एक स्त्री के रूप में देखने लगी थी, ऐसी स्त्री जो अपने जीवन के तीसरे दशक में अकेली रह गई थी, जिसे जीने के लिए सहारे की आवश्यकता थी, निर्मम नियति ने जो खेल उसके साथ खेला था वह उसके साथ कदम मिलाकर जीवन भर रो तो नहीं सकती थी।

स्कूल समाप्त होते ही ईहा ने एक छोटी सी नौकरी कर ली और एक अपार्टमेंट किराए पर लेकर रहने लगी। शरन का सोलहवाँ जन्मदिन था और माँ ने उसे बुलाया था। वह इंकार न कर सकी थी, वहीं तरुण से मुलाकात हुई, वह व्यवसाय में अपने मामा का हाथ बँटाने सूरीनाम आया था। माँ तरुण को पसंद करती थी, ईहा को भी कोई आपत्ति न थी और वह दोनों सादा सी औपचारिकताओं के साथ अटूट बंधन में बँध गए थे। स्थापित व्यवसाय को आगे बढ़ाने के लिए तरुण को अकसर हॉलैंड व मियामी जाना पड़ता था सो अकेलेपन से बचने के लिए उसने अपनी नौकरी नहीं छोड़ी थी। आरंभिक सुनहरे पलों के बाद धीरे-धीरे जिम्मेदारियाँ और थकान उन्हें एक दूसरे से दूर करने लगे थे।

इन्हीं विचारों में खोई थी कि बालों पर हल्का सा स्पर्श पा पीछे देखा तो तरुण खड़े मुस्कुरा रहे थे, कितना खोई थी वह!!! कि सूखे पत्तों पर गुज़र कर आए तरुण की पदचाप भी न सुनी। कुछ कहने की अपेक्षा स्वभाव के प्रतिकूल तरुण धीरे से उसके साथ वहीं टूटे तने पर बैठ गए और तभी कोई चिड़िया ज़ोर से से कूक गई, मानों इस परिस्थिति से हैरान हो। बहुत देर यूँ ही बैठे रहे दोनों, दोनों अपने-अपने विचारों में खोये, एक दूसरे के पास लेकिन कितने दूर, फिर भी एक लय में, पिछले चार दिन से वे इसी लय में चल रहे हैं।

पिछले माह की बात है... यह संयोग ही था कि एक रोज़ मेले में घूम रहे थे और प्रवेश के लिए ली गई टिकटों के लकी ड्रॉ में सूरीनाम के केंद्र में संरक्षित प्रकृति पार्क में सप्ताह भर ठहरने का अवसर मिल गया। ब्लॉमन्स्टीन झील के किनारे स्थित ब्रौन्ज़बर्ग नेशनल पार्क दुनिया का प्रसिद्ध और सशक्त वन है और सूरीनाम का प्रिय पर्यटन स्थल भी। संरक्षित पौधों, पेड़ों और वन्यजीवों से भरा यह वन दुनिया भर में तितलियों के लिए प्रसिद्ध है। नीली तितलियाँ यहाँ का विशेष आकर्षण है। वन्य-जीवन प्रेमी ईहा के लिए यह स्थान धरती पर स्वर्ग था। ब्रौन्ज़बर्ग नेशनल पार्क में कुछ समय बिताने की उसकी बहुत दिन से इच्छा थी, तरुण जानते थे लेकिन दोनों कभी एक साथ समय न निकाल पाए थे, दोनों ने इस अवसर का लाभ उठाने का निश्चय किया और पहुँच गए ब्रौन्ज़बर्ग। लंबी पहाड़ी ड्राइव अपने आप में किसी रोमांच से कम न थी। एक छोटी बस और चार दंपति। सभी उत्सुक, पहली बार इस यात्रा पर आए। कई जगह तो सड़क इतनी सँकरी थी कि लगा जाने गंतव्य पर पहुँचेंगे भी या नहीं। कहीं इतना सघन वन कि फ़ोन-वोन सब बंद.....सभी को डर था यदि गाड़ी बंद हो गई तो!!! किंतु गाड़ी बंद नहीं हुई, हाँ उसकी खिड़की के पास से एक नीली तितली ज़रूर उड़कर गई और इससे पहले कि वह उसे देख पाती वह जंगल में समा गई। इन्हीं सब रोमांचों से घिरे गंतव्य पर पहुँचे। बेहद तरतीब से जंगल में पगडंडियाँ साफ की गईं थी, आधुनिक सुविधाओं से सुसज्जित छोटे-छोटे सुंदर कॉटेज ऐसे बने थे कि पास होते हुए भी ऐसा लगता मानों हर कॉटेज बस अकेला ही है।

अगले दिन लंबी पैदल यात्रा कर आइरीन फॉल पहुँचना एक अलग ही रोमांचकारी अनुभव रहा, ऊँचा-नीचा, टेढ़ा-मेढ़ा, धरती को चीरती सघन वृक्षों की जड़ों से बनी प्राकृतिक सीढ़ियाँ। और अंत में ऊपर से गिरता शीतल जल प्रपात..... लगा जीवन की सारी कलौंच साफ हो गई है। कितनी बार शब्दों के आदान-प्रदान के बिना बहुत कुछ कह समझ लिया जाता है, ईहा व तरुण इसका प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे थे। कितने सुंदर पल सिमट आए थे उनकी झोली में, पर नीली तितली दोबारा न दिखी थी।

....धीरे से उसने तरुण के काँधे पर अपना सर टिका दिया और बहुत धीमे से बोली - " तरुण क्या हम सदैव इस जंगल में नहीं रह सकते?"

"नहीं ईहा यहाँ तो हम अपने-अपने अन्दर के जानवरों को छोड़ने आए थे। चलो अब वापस चलें।" तरुण के हाथ का सहारा ले वह खड़ी हुई, तरुण यूँ ही उसका हाथ थामे आगे बढ़ चले।

एक नीली तितली उसकी मुट्ठी में आ गई थी और एक उनके पीछे-पीछे आ रही थी।

ईहा समझ गई थी कि ज़िन्दगी वैसी नहीं जैसी हम समझते हैं! ज़िन्दगी न वैसी है जैसी हम इसे बनाना चाहते हैं, एक सफ़र है, और सफ़र ही जीवन है.... कि खुशी एक नीली तितली है जो छोटे-छोटे लम्हों में आ बसती है।

****

छुअन

विकेश निझावन

वृन्दा को आधी रात में नहाते हुए देख लिया था शान्ति ने। बस, इसी पर हंगामा खड़ा कर दिया, 'ऐ करमजली, ऐसी कौन सी धौंकनी जल रही तेरे अंदर, जो इस बकत अपणे को ठण्डा करने चली थी।'

'ना माँ! वो तो गागर में से पानी पलटने लगी तो गागर पूरी की पूरी पलटी गई। कपड़े आधे से ज़्यादा गीले हो गए। सोचा, कपड़े तो बदलने ही हैं, क्यों न दो लोटा पानी ही ऊपर उंडेल लूँ। गरमी के मारे पसीने की बदबू भी नथुनों में भर रही थी।'

'बस-बस, रहण दे तू। ज्यादा होशियार न बण। सब जाणू मैं।'शान्ति का स्वर पहले से ऊँचा हो आया था। उसके इन बोलों से शिवा की नींद उखड़ गई। अपने अंगोछे को कमर में ठूंसता हुआ वह पास आ गया, 'तू क्या जाणे, बता तो?'

'इस बकत तू कहाँ से आ गया, बिच्छु की औलाद! बाप-बेटी दोनों को इस बकत गरमी मार रयी क्या?'

'चुप रह हरामजादी। क्यूँ मेरी छोरी के पीछे पड़ी है। दिन-रात तू उसे कोस्से, मैं सब जाणू।'

'अब जाण लिया ना। जब तक ये मेरे धोरे रहेगी, मैं इसका जीणा हराम करती रहूँ।'

'जीणा तो मैं तेरा हराम करूँ। दो कपड़ों में ब्याह दिया था तेरे बाप ने, जे कह कर कि जैसा नाम वैसी छोरी। घर को संभाल कर रखेगी। पर तू तो नाम से बिल्कुल उलटी निकली री। जब से इस घर में आयी, अशान्ति ही अशान्ति।'

'अब आधी रात को मत छेड़ मेरे को।' शान्ति दहाड़ी, 'गली-मुहल्ला जाग जाएगा, फिर किसी बिल में मुँह छिपाता फिरेगा। अपनी छोरी को समझा, कितना भी रगड़ ले, बदन की मैल ऐसे न जाए। कौए को कभी हँस बणते देखा क्या?'

शिवा तो बस मुट्ठियाँ भिंच कर रह गया। कहीं से अपनी जुबान भी काट डाली होगी उसने।

कई बार सोचता है, इस औरत के आगे तो चुप रह जाणा बेहतर! एक कहेगा, दस सुनणे को मिलेंगी। पर कब तक जुबान को लगाम दे।

'कम्बख्त वृन्दा ने भी कैसी जिन्दगी पायी। पैदा होते ही माँ को खा गयी। पारो की जगह ये भगवान को प्यारी हो जाती तो कितना अच्छा होता। पारो के साथ उसका जीवन अच्छा गुजर जाता और इस राक्षसनी को भी नरक जैसी जिन्दगी न काटनी पड़ती। ये तो अम्मा उस बकत जिन्दा थी, सो इसे सम्भाल लिया। वरना वह तो इसे कहीं पानी में छोड़ आता।' सच में, एक रोज़ ऐसा ही ख्याल आया था शिवा के मन में। लेकिन जाने कैसे शिवा के मन को अम्मा ने पढ़ लिया था। उसके कंधे पर हाथ रखती बोली थी, 'तू क्या सोच रहा है, शिवा?'

'मैं! कुछ भी तो नहीं!' शिवा सकपका गया था।

विकेश निझावन के दस कहानी संग्रह, चार कविता संग्रह, दो उपन्यास, एक लघुकथा संग्रह तथा कुछ बाल पुस्तकें प्रकाशित। कहानी संग्रह 'अब दिन नहीं निकलेगा' एवं कविता संग्रह 'एक टुकड़ा आकाश' हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत। 200 से ऊपर कहानियाँ एवं कविताएँ प्रकाशित। कहानियाँ न चाहते हुए, ऊदबिलाव, एक टुकड़ा ज़िन्दगी का दूरदर्शन पर नाट्य रूपांतर। कुछ कहानियों का गुजराती, अंग्रेज़ी, पंजाबी, तेलगू एवं उर्दू में अनुवाद। विकेश जी साहित्यिक पत्रिका 'पुष्पगन्धा' का संपादक है।
सम्पर्क:सिविल लाइन्स, आई. टी. आई बस स्टॉप के सामने, अम्बाला शहर-134003 'हरियाणा'
ईमेल: vikeshnijhawan@rediffmail.com

'इस छोरी के बारे में सोच रहा था ना?'

'हाँ!' शिवा ने सीधे से कह दिया।

'छोरियाँ तो बाप की ही होवें, फिर चिन्ता किस बात की। मैं कब तक जिन्दा रहूँगी। जब तक हूँ, ये बड़ी हो जावेगी। मेरे बाद तेरे को रोटी-पानी पूछ लेगी। और फिर छोरियों को तो बेगाने घर चले जाणा। तू क्यों अपने मन को काला करे।'

'ये छोरी कोण से घर जाएगी, कभी सूरत देखी इसकी?' शिवा ने प्रश्न दागा।

'सूरत कोई माने न रखे। आदमी किस्मत का जीता है।'

शिवा अम्मा के चेहरे की ओर देखने लगा था। अम्मा की तो हर बात सौलह आने सच। जाने कौन सी किताब पढ़ कर आयी अम्मा।

'ना, किताब तो कोई न पढ़ के आयी। जिन्दगी ने ही सिखाया सब कुछ।' अब तो शिवा हैरान परेशान। वह तो मन ही मन सोच रहा था। उसने अम्मा से तो कुछ भी न कहा। फिर अम्मा ने कैसे जाण ली उसके मन की बात? एक बार तो मन हुआ शिवा का, अम्मा से कह दे तू परमात्मा का रूप तो नहीं?

लेकिन इसका जवाब तो अम्मा बड़े आराम से दे देगी। कहेगी, इस बात को तो दुनिया जाणे कि माँ परमात्मा का ही रूप होवे।

वृन्दा गयी भी तो किस पर, शिवा अक्सर सोचने लगता। पारो तो ऐसी न थी। रंग भले सांवला था, नैन नकश तो अच्छे थे। शिवा खुद अलमारी के आगे लगे बड़े शीशे में अपना चेहरा देखने लगता। उसमें भी क्या कमी है। अभी तक जवान गभरू लगता है।

अजीब बात है, जब भी शिवा इस शीशे के आगे आ खड़ा होता है, उसे अपना चेहरा कम, पारो का चेहरा ज़्यादा दिखाई देता है। धीरे-धीरे वह चेहरा वृन्दा के चेहरे में तबदील होने लगता है।

वृन्दा खातिर तो शिवा ने दूसरा ब्याह किया। इस छोरी जात को वह अकेला भला कैसे सँभाल पाएगा। अम्मा के बाद तो रिश्तेदारों ने भी यही राय दी थी। शान्ति के बाप को

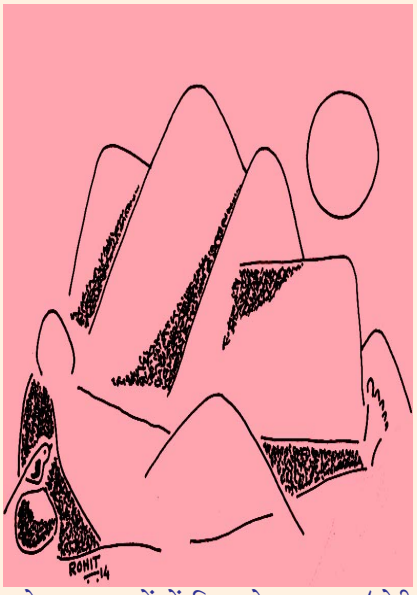

बड़े साफ शब्दों में शिवा ने कहा था, 'मेरी तो बस एक ही मांग जी। मेरी बेटी को माँ जैसा प्यार मिलना चाहिए। कल को इसे ब्याहना होगा तो बेटी समझ कर इसे बिदाई दे।'

शान्ति और उसके बाप ने बराबर हामी भरी थी शिवा के आगे। लेकिन शान्ति को तो पहले ही दिन से वृन्दा खटकने लगी थी। शिवा तो बोला था, 'इतने वादे क्यूँ किये थे शादी से पहले?'

'अरे शादी से पहले इसकी सूरत देख ली होती तो फैसला कुछ और होना था। तूने कहा छोरी है, हमने मान लिया। अब क्या पता था कि छोरी बिल्कुल छिपकली जैसी।'

शान्ति के इन बाणों से शिवा बचना चाहता है। कुछ कह देगा तो बाण और तीखे होते चले जाएँगे।

वृन्दा छोटी थी तो शिवा उसके मलूक से जिस्म को सहला दिया करता। लेकिन धीरे- धीरे वृन्दा का जिस्म करड़ा होता चला गया था। शिवा ने सुन रखा था कि छोरियाँ जल्दी बड़ी हो जाती हैं। शिवा को तो यह जादू सा लगा, जो उसने अपनी आँखों से देख लिया। टूटे बंद कपाट से एक बार नज़र पड़ गई तो शिवा परेशान हो गया। झट से पीछे को हट गया था। तब रात भर शिवा यही सोचता रह गया था, इसे जल्दी ब्याह देना चाहिए। शिवा ने मन की बात शान्ति से कही तो शान्ति ने झट से दाँतों तले अँगुली दबा ली। दबा क्या ली, अँगुली को काट ही डाला।

'ये क्या कर रही तू?'

'कुछ नहीं! नजर उतार रयी तेरी। जिन्दगी में पहली बार तूने कोई अकल की बात की।'

'तू कहीं पर इसकी शादी की बात चला। गली-मुहल्ले में तेरी तो सब के साथ जाण पछाण है।'

'हाँ, जाण पछाण तो है। पर इसके लिये तो किसी जादूगरनी के पास जाणा पड़ेगा।'

'क्या मतलब?' शिवा चौंका था।

'अरे, ये जादूगरनियाँ सबको भ्रम में डाल दें। जब तक किसी की आँखों के आगे भरम की पट्टी नहीं पड़ेगी, तेरी छोरी को कोई नहीं ब्याहने वाला।'

'अब ये छोरी मेरी नहीं, तेरी भी है। कुछ सोच इसके बारे में।' शिवा ने खुद को काबू में रखते हुए कहा।

'ठीक है, मैं देखूँगी।' शान्ति हाथ के पंजों के बल खड़ी होती बोली, 'अब तो कुछ कर के रहूँ मैं, चाहे मुझे खुद को जादूगरनी क्यों न बनना पड़ जाए।'

अगले ही रोज़ शान्ति ने शिवा से आकर कहा था, 'देख शिवा, एक छोकरा मेरी नजर में आया है। मैंने उसे घर आने को बोला है। बस तू वृन्दा को उसके साथ भेज देना। वैसे आगे तेरी छोरी की किस्मत कि वह इसे ले जाए।'

'लड़का करता क्या है?'

'लो, सुन लो! अब तू ये बी पूछे कि लड़का करता क्या है। अरे कुछ बी करे, इतने पर भी शुकर मना कि वह घर पर आ रहा है।'

'उसका कुछ नाम, आता-पता तो होगा?'

'अरे, राजा नाम है उसका .देखेगा तो देखता रह जाएगा।'

शिवा चुप कर गया। सोचा, लड़के से ही उसके कारोबार के बारे में पूछ लेगा।

राजा को देखते ही शिवा सोच में पड़ गया। ऐसा लड़का भला वृन्दा से शादी क्यों करेगा? सुन्दर चेहरा मोहरा है इसका। कद भी छः फुट के आसपास होगा। फिर भी

शिवा ने हिम्मत करके पूछ लिया, 'तेरा कारोबार क्या है रे?'

'कारोबार! धंधे में कैसा कारोबार। लड़की के लिए तो धंधे में एक ही कारोबार चले।'

'क्या मतलब?' शिवा के नथुने फड़कने को हो आए।

'तू चिन्ता नहीं कर बाऊ! जैसी तेरी छोकरी न, उसे भी अच्छा माल दिलाऊँगा। कोई घटिया आदमी न आने का उसके पास।'

'तू अभी यहाँ से बाहर निकल जा। जरा देर और रुका न, तो पुलिस को बुला लूँगा।

'हमें डरा नहीं बाऊ। तेरी बीवी ने बुलाया था, हम आ गए। अब तू कह रहा है, तो चले जाते हैं। फिर भी कभी जरूरत पड़े तो याद कर लेना। तुम्हारी बीवी के पास हमारा नम्बर लिखा पड़ा है।'

शिवा का चेहरा देखते ही राजा वहाँ ज्यादा देर नहीं रुका। उसके बाहर जाते ही शान्ति पास आ गयी तो शिवा चिल्लाया था, 'राँड कहीं की। छोरी का सौदा करने चली थी। जब तेरी छोरी होएगी न, तब बुलाइयो ऐसे धंधेबाज को।'

शान्ति मुँह खोलने लगी तो शिवा गरजा था, 'चोऽप हरामखोर! अब एक लफज मत बोलियो।'

शान्ति सच में कुछ न बोली। शिवा के इस रौद्र रूप से वह सच में डर गई थी।

व्यक्ति को डर दूसरे का नहीं, अपने ही कर्मों का होता है। शान्ति जो करने जा रही थी, डर तो उसे उसी बात का था।

जाने कितने दिन शान्ति और शिवा के बीच एक सन्नाटा पसरा रहा।

'ऐ वृन्दा, कभी-कभी इधर-उधर घूम आया कर।'शान्ति ने बड़े लाड़ से वृन्दा से कहा, 'सारा दिन घर पर बैठी रहती है, मन ऊब नहीं जाता क्या? गली मुहल्ले में किसी के पास जाकर बैठेगी, तो किसी छोरे की तुझ पर नजर पड़ेगी।'

नजर! वृन्दा सोच में पड़ गयी। जब छोटी थी, सारा वक्त गली-मुहल्ले में ही तो दौड़ती कूदती थी। तब तो घर पर बिल्कुल न टिकती थी। ज्यादा दोस्ती तो उसकी छोकरों

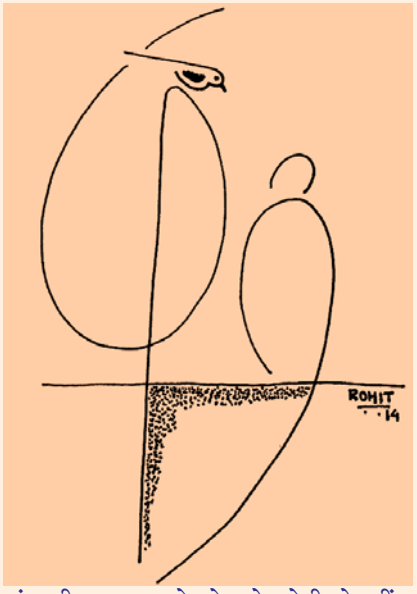

संग थी। अम्मा को तो इसे चोटी से खींच कर लाना पड़ता था।

ज्यों-ज्यों वृन्दा बड़ी होती गयी, होंठ पर कटे हुए का निशान और गहरा गया। दाँत भी जाने कैसे होंठों से बाहर को आ गए। और दायीं आँख में सफेद फफोला तो उसकी कुरूपता को और बढ़ा गया। एक रोज तो वृन्दा घर पर आकर खूब रोयी थी।

'अरी, तुझे क्या हुआ?'अम्मा के साथ- साथ शिवा ने भी पूछा था।

'छोकरे कहें, तू घर से बाहर मत निकला कर। तुझे देख हमें तो डर लगे।' वृन्दा ज़ार-ज़ार रोती बोली थी।

'ठीक है, तू घर पर ही खेल लिया कर। तुझे क्या पड़ी है इन खसमों को मुँह लगाणे की।' अम्मा भड़क पड़ी थी। तब से वृन्दा अपने में सिमट कर रह गई थी।

कल ही शान्ति वृन्दा को समझा रही थी, 'गली-मुहल्ले की छोकरियों से दोस्ती कर। उन्हें सखी-सहेली बणा। अपने साथ वालियों के पास बैठेगी तो कुछ समझेगी। जिसम पे कुछ उभार भी आएगा।' शान्ति की कुछ बातें तो वृन्दा के लिए पहेलियाँ समान थीं।

हफ्ता भर ही हुआ था वृन्दा को गली-मुहल्ले में ताँक-झाँक करते कि बादली से अच्छी- खासी दोस्ती हो गयी। वृन्दा ने तो कुछ खास बात न की थी उससे, पर बादली ही दिन में दो-चार बार उसे घर से खींच कर ले जाती। कभी शहर से बाहर वाले पार्क में, कभी रेत वाले टीबे के पास तो कभी मॉल वाले सिनेमा हॉल के पीछे। बादली उसे बेमतलब इधर-उधर क्यों ले जाती है, वृन्दा सोचने लगती।

एक रोज़ तो हद ही हो गयी। बादली उसे स्टेशन से परे वाले पुल के नीचे ले गयी।

'तू मुझे यहाँ क्यों ले आयी?' वृन्दा ने काँपते हुए बादली से पूछा था।

'देख, जब ऊपर से गाड़ी गुजरेगी न, तब तुझे लगेगा, तू भी गाड़ी में बैठी है।'

'लेकिन इसका क्या मतलब...?' वृन्दा ने सवाल तो किया लेकिन उसका सवाल गाड़ी के शोर में गुम होकर रह गया। पुल के ऊपर से गाड़ी गुजर रही थी। गाड़ी के गुजरते ही पुल के भीतर पूरी तरह से अँधेरा हो जाता। एकाएक वृन्दा ने महसूस किया कि कोई उसके शरीर को पूरी तरह से दबोच रहा है।

गाड़ी के गुजरते ही सुरंग में फिर से रोशनी हो गई थी।

'चल, घर चलते हैं।' वृन्दा पूरी तरह से काँप रही थी।

'अच्छा ये बता, जब गाड़ी पुल पर से गुजर रही थी, तुझे लगा न कि तू भी गाड़ी में बैठी है?'

'नहीं, मुझे लगा, कोई मुझे छू रहा है।'

'तुझे वो छुअन कैसी लगी?' बादली मुस्कराती हुई बोली।

'मतलब?' वृन्दा का गला पूरी तरह से सूख रहा था।

'अगर तुझे वो छुअन अच्छी लगी हो तो मैं तुझे उसके पास दौबारा ले जा सकती हूँ।'

'वह कौन था, बादली?' अब वृन्दा नहीं दबा पायी अपने को।

'हर अँधेरे में एक छुअन होती है री! जहाँ-जहाँ से तू गुजरेगी, तुझे कई जगह ऐसे अँधेरे मिलेंगे। और इन अँधेरों में तुझे अपनी-अपनी तरह की छुअन का आभास होगा।'

'तू मुझे डरा रही है?'

'नहीं, औरत की ज़िंदगी का यही सच है री!'

'तू मुझे यहाँ क्यों लायी? अब मैं घर से कभी बाहर नहीं निकलूँगी। तेरे साथ भी कभी न आऊँगी।'

'पगली, अगर तू घर से बाहर नहीं आएगी तो यह अँधेरा तेरे घर तक पहुँच जाएगा। और यह छुअन भी।'

तू झूठ कह रही है। मुझे भरमा रही है।'

'मैं झूठ नहीं कह रही। मैं तेरी माँ के कहने पर तुझे यहाँ लायी हूँ। तेरी सौतेली माँ तुझे इस अँधेरे में गर्क करना चाहती है। अगर तू यहाँ न आयी तो तेरी माँ इस अँधेरे को झोली में भर कर घर ले जाएगी। तब तेरा पूरा घर अँधेरे में डूब जाएगा। तेरी माँ ने मुझे साफ- साफ बोला है, वह तेरे से भी नफरत करती है और तेरे बाप से भी। वह तुम दोनों से झंझट मुक्त होना चाहती है।'

वृन्दा को एकाएक महसूस हुआ, मन की कई परतें होती हैं। अगर उन परतों को एक-एक करके हटाया जाए तो वह जीवन की थाह पा सकता है। उसकी दृष्टि कहीं तक भी पहुँच सकती है। इस वक्त शान्ति का चेहरा और उसके भीतर का सब कुछ वृन्दा को साफ- साफ नज़र आने लगा था। शान्ति अब उसे जितना लाड़ लड़ाने लगी है, वृन्दा को उसके भीतर का ज़हर पूरे उफान पर दिखाई देने लगा है। अब यह ज़हर किसी भी वक्त उसके और शिवा की नसों में फैल सकता है। बादली ने जिस अँधेरे का जिक्र किया था, वह जल्दी ही उन्हें लील डालेगा।

रात वृन्दा नींद में चिल्ला पड़ी तो शिवा की नींद उखड़ गई। उसने पास आ कर वृन्दा के माथे पर हाथ रखा तो वह पसीने से तर थी। उसकी साँस भी उखड़ रही थी।

'तुझे क्या हुआ री! कोई सपना देखा क्या?' शिवा उसका माथा छूते हुए बोला।

'बाजी, मैं जीना चाहती हूँ। मैं अब इस घर में नहीं रहना चाहती। तू जल्दी कहीं मेरा ब्याह करा दे।'

'पागल हो गई है, तू जी नहीं रही क्या? ये रात के बकत क्या-क्या सोच रही है तू। जरा दिन हो जाने दे, फिर बात करते हैं।'

'नहीं बाजी, मैं दिन के लिये नहीं बनी। मैं जानती हूँ, रोशनी में कोई भी मेरा चेहरा स्वीकार न करेगा। लोग मेरे चेहरे से नफरत करते हैं। घिन्न आती है उन्हें मेरे चेहरे से। मुझे इस अँधेरे में ही कोई ले जाए तो ले जाए।'

'तू कैसी बातें कर रही है। इस तरह से भी कभी ब्याह होते हैं।'

'एक और बात कहनी है बाजी!' वृन्दा ने शिवा के हाथों को कस कर पकड़ लिया।

'कह तो!'

'मेरी शादी करा के तू कहीं चले जाना। यहाँ मत रहना।'

'यहाँ मत रहूँ! कहाँ चला जाऊँ?'

'कहीं भी। माँ हमारी दुश्मन बन चुकी है।' और वृन्दा ने बादली वाली सारी बात दोहरा दी।

'जरा धीरे बोल!' शिवा ने वृन्दा के मुँह पर अपना हाथ रख दिया, 'मैं सब समझता हूँ।... लेकिन मैं दूर चला गया तो तू मेरे बिना रह पाएगी?'

'हाँ, रह लूँगी। भगवान जी मेरा जीवन साथी दिला दें तो मैं उसके साथ रहूँगी।'

'लेकिन कहाँ से मिलेगा तेरा जीवन साथी? कैसे पछाणेगी तू उसे?'

'मुझे उसे नहीं पछाणना। वह मेरे को पछाणेगा। मैंने तो सब भगवान् जी पर छोड़ दिया।'

'एक बात सुन!' कुछ पल रुक कर शिवा बोला।

'क्या?' वृन्दा का स्वर फुसफुसाहट भरा था।

'तू सबह उठ कर मन्दिर जाना। भगवान् जी के आगे प्रार्थना करना। तू उन से जो मांगेगी, वे तुझे जरूर देंगे। भगवान् जी तेरी ज़रूर सुनेंगे।' शिवा का स्वर याचना भरा था।

'हाँ बाजी, मैं सबेरे मन्दिर जाऊँगी। मुझे भी ऐसा लगे कि भगवान् जी मेरी जरूर सुनेंगे। अब मैं हर रोज मन्दिर जाया करूँगी।'

शिवा वृन्दा के सर पर हाथ फेरता हुआ उठ खड़ा हुआ।

शिवा दबे पाँव अपनी चारपाई पर आ गया। एक नज़र भर वह शान्ति का चेहरा देख लेना चाहता था। कहीं ऐसा तो नहीं कि शान्ति की नींद भी उखड़ गई हो और उसने उनकी बातें सुन ली हों। लेकिन पास पहुँचते ही शान्ति के खर्राटों से शिवा जान गया कि वह गहरी नींद सो रही है।

शिवा देर तक करवटें बदलता रहा। जब आँख लगी तो राजा का चेहरा उसकी आँखों के आगे घूमने लगा। रह-रह कर शान्ति की हँसी के ठहाके भी उसके कानों में गूँज रहे थे।

जाने कब सुबह हुई, कब वह बिस्तर से उठा, और जाने किस राह चल दिया। वृन्दा की आँख पूरे पाँच बजे खुली। बिना किसी की ओर झाँके उसने अपनी गुल्लक में से पाँच रुपये के सिक्के निकाले और मन्दिर की ओर चल दी।

मन्दिर के बाहर खड़े रेहड़ी वाले से उसने दिया बाती ली, मन्दिर के भीतर जाकर उसने दीया जलाया और देर तक भगवान् जी की मूर्ति के आगे नतमस्तक हुई रही।

आज कुछ अच्छा ही होगा, वृन्दा रास्ते भर यही सोचती हुई घर पहुँची। लेकिन घर की दहलीज के भीतर कदम रखते ही वृन्दा को लगा, भगवान् जी जीवन भर इन्सान की परीक्षा लेते रहते हैं। लेकिन यह भी कैसी परीक्षा! उसे देखते है शान्ति ने उसे चोटी से पकड़ लिर्या ऐऽऽ! कहाँ गई थी ये सबेरे-सबेरे?

'मैं मन्दिर गई थी।' वृन्दा के गले में जैसे कुछ फँसने को हो आया।

'बाप को कहाँ छोड़ आयी?'

'मैं तो अकेली गई थी।'

'झूठ बोलती है। शान्ति ने उसकी चोटी को जोर से खींचा तो वृन्दा चिल्ला पड़ी, 'मैं सच कह रही हूँ। मैं अकेली ही गई थी।'

वृन्दा की चीख सुन गली की औरतें भीतर आ गईं।

'ऐऽ! क्यों सुबह- सुबह बरस रही है बेचारी पर?'

'बरसूँ न तो और क्या करू? बाप-बेटी में न जाने क्या खिचड़ी पक रही है। दोनों सबेरे से घर से गायब हैं। इससे पूछा तो हरामजादी कहती है अकेली ही गई थी।

अगर अकेली ही गई थी तो जे तो पता चले कि मुँह-अँधेरे किस यार से मिलने गई थी।

'मैं मन्दिर गई थी।' वृन्दा पूरी तरह से रुआँसी होती पुनः बोली।

'अरी फिर झूठ! तेरे ये लछण तो मुझे कब से नजर आ रहे थे।'

'अरी अब बस भी कर शान्ति।' एक ने तो पास आकर शान्ति के मुँह पर हाथ रख दिया, 'जवान छोकरी को यों न दबा। कहीं गेंद जैसी उछल न जाए।'

'मैं तो कहूँ, उछले! दफा होए कहीं।'

'अरी, ट्प्पा खाकर तेरे ही माथे पर आ बजी तो माथा फूट जाएगा तेरा।'

'किस्मत तो मेरी पहले ही फूट रही।'शान्ति ने माथे पर दोहत्थड़ मारा, फिर वृन्दा की ओर पलटी, 'अब खड़ी-खड़ी घूर क्या रही है। दफा हो जा मेरे आगे से।'

वृन्दा झट से कमरे के भीतर चली गई। ये माँ क्या कह रही है? बाजी घर पर नहीं है। कहाँ गया बाजी? वृन्दा को समझते देर न लगी। कहीं बाजी आज ही तो नहीं खिसक लिया यहाँ से? चलो अच्छा हुआ। अब माँ सताए बाजी को...। वृन्दा ने छाती पर हाथ रखा और लम्बी साँस ली। अब वह भी ज्यादा देर यहाँ नहीं रहने की। भगवान् जी ने उसकी इतनी सुन ली, एक दिन आगे की भी सुन लेंगे।

आज मन्दिर जाते हुए वृन्दा माँ से कह कर गई थी कि वह मन्दिर जा रही है। शान्ति जोर से चीखी थी, 'जा-जा, कहीं भी जा। अपनी मनहूस सूरत मेरे से दूर ही रखा कर।'

वृन्दा सच में मनहूस ही निकली। जितनी भगवान् जी से मन्नतें माँग रही है, उतना ही दुख पा रही है। आज मन्दिर से हो कर लौटी तो मनहूसियत ने अपना ताँडव ही दिखा दिया। घर के बाहर गली के लोगों का हजूम। शान्ति दीवार से माथा पटक लहुलूहान हुई पड़ी थी। आखिर हुआ क्या? वृन्दा कुछ पूछ पाती, उससे पहले जमना चाची उसके पास आ उसे गले से लगाते ही बिलख पड़ी, 'तू तू अनाथ हो गई वृन्दा... तेरी माँ उजड़ गई री... राँड हो गई वो... शिवा छोड़ गया हम सब को... ।'

जमना चाची ये क्या कह रही है। क्या हुआ बाजी को? कितने सवाल वृन्दा को डसने को आये। धीरे-धीरे सुन्दर ने बताया था, यहाँ से चार स्टेशन आगे रेल की पटड़ियों पर शिवा की लाश मिली। चीथड़े हुई पड़ी थी। पुलिस ने जल्दी ही उसका दाह-संस्कार कर दिया। शिवा के झोले से दो-चार कागज़ मिले थे, जिससे पुलिस को यहाँ का आता-पता चला।

'ना, अब ना जी पाऊँगी।' शान्ति की मूर्छा टूटती तो वह फिर से छाती नीली करने लगती। पड़ौसनें उसके हाथ पकड़ती रह जातीं। वृन्दा तो बुत्त हो आई थी। बाजी ने ये क्या किया? क्यों उसने बाजी को यहाँ से चले जाने के लिये कहा। वह बाजी की हत्यारिन है। बाजी घर में दुखी थे, जिन्दा तो थे ना?

पूरे दिन चूल्हा नहीं जला घर में। पड़ौस वाले केतली भर चाय की रख गए थे। देर शाम को राजा आया था घर में। वृन्दा के पास बैठता बोला था, 'तू काहे को खलास कर रही है अपने को? जाने वाला तो चला गया। ले, तेरे लिये दाल-भात लाया हूँ, खा ले। दो -चार दिन निकल जाएँ, फिर आकर ले जाऊँगा तेरे को।'

वृन्दा सब समझ गई। अब उसकी गर्दन और राजा की छुरी। शान्ति भी उसके कान में फुसफुसा दी थी, 'चुपचाप चली जाना इसके साथ। कोई डरामा ना खड़ा करियो।'

आज आखिरी बार वह मन्दिर जाएगी, यही सोच वृन्दा सुबह-सवेरे अपना झोला उठा मन्दिर की चौखट पर जा बैठी। देर तक भगवान् जी की मूर्ति के चेहरे की ओर देखती रही। एकाएक वृन्दा को लगा, भगवान् जी उसकी ओर देख कर मुस्करा रहे हैं।

'हाँ, तुम तो मुस्कराओगे ही।' वृन्दा बुदबुदा उठी, 'आज मैं भी बाजी के पास चली जाऊँगी। तब तुम और खुश हो लेना।' सहसा वृन्दा को लगा, वह बहुत ऊँचे से बोल गई है।

सच में वह ऊँचे से बोल गई थी। तभी पास से गुज़रता आदमी, जो लाठी के सहारे ऊपर चढ़ रहा था, रुक गया। वृन्दा की ओर पलटते हुए बोला, 'कहाँ गया है तुम्हारा बाजी?'

'मेरा बाजी भगवान् जी के पास चला गया।' वृन्दा सुबक पड़ी।

'तो तुम भी वहाँ जाना चाहती हो?' वह व्यक्ति मुस्करा रहा था।

'हाँ, ऐसे जीने से तो मर जाना बेहतर।'

'आखिर ऐसा क्या रहा तुम्हारे जीवन में?' उस व्यक्ति ने वृन्दा के सर पर हाथ रख दिया।

'मेरे आगे अँधेरा ही अँधेरा है। मैं कहाँ जाऊँ?'

'इतनी जल्दी हार मान गई इस जीवन से। मुझे देख रही है?'

'तुम्हें क्या हुआ, अच्छे-भले तो हो।

उस व्यक्ति ने देर नहीं लगायी। तुरन्त पूरे बदन पर लिपटी चादर को एक तरफ उछाल दिया। वृन्दा अवाक्! एक बाजू और एक टाँग से अपाहिज था वह। कुछ पल के लिये तो वृन्दा जड़ हो आयी। जैसे-तैसे खुद को सँभाला। फिर भी लगभग रोने को आई, 'लेकिन मैं अब उस घर में वापिस नहीं जाऊँगी। माँ अब मुझे जीने नहीं देगी। राजा कभी भी आकर ले जाएगा मुझे।'

'क्या तुम मेरे घर चलोगी?' उस व्यक्ति ने साहस किया।

'तुम्हारे घर!' वृन्दा सोच में पड़ गई।

'क्या सोच रही हो?' कुछ पल रुक कर व्यक्ति ने प्रश्न किया।

'तुम कौन हो, मैं नहीं जानती। किस रिश्ते से तुम्हारे घर जाऊँगी। लोग क्या कहेंगे, क्या सोचेंगे?'

'लोग वही सोचेंगे, जो तुम सोचोगी।'

'कहीं तुम पर बोझ न बन जाऊँ मैं।'

'मैं भी तो बोझ हूँ। एक टाँग और एक बाजू से लाचार। हम मिलकर एक दूसरे का बोझ बाँट सकते हैं।'

वृन्दा देर तक उसकी आँखों में झाँकती रही। सहसा बोली, 'मैंने तो भगवान् जी से प्रार्थना की थी कि कोई आए और मुझे ब्याह कर ले जाए। मैं तो जीवन साथी ढूँढ़ रही थी।'

'मुझसे करोगी ब्याह?'

'मैं माँ बनना चाहती हूँ। मैं औलाद जनना चाहती हूँ। मुझे देहगंध की भूख है। तुम तो पहले ही अक्षम हो।'

'नहीं, मैं मन से सक्षम हूँ। मैं तुम्हें वो सब दूँगा, जो तुम चाहती हो।'

मन्दिर से बाहर निकलते हुए वृन्दा उसकी लाठी बन गई थी।

घर भले ही कच्चा-पक्का था, लेकिन चार दीवारें तो थीं उसकी। हाँ, यहाँ वह सुरक्षित रह सकती है। उस व्यक्ति ने जीवन भर उससे साथ निभाने का वचन दिया है।

रात होने को आई तो वृन्दा ने अपना चेहरा उसकी छाती में गढ़ा दिया। वृन्दा ने अपना सर्वस्व सौंप दिया था उसे।

दिन निकल आया था। अगली सुबह हो गई थी। जीवन चक्र अपनी गति से घूमने लगा। वह व्यक्ति दिन में घर से बाहर निकल जाता। रात घिरने से पहले घर लौट आता। वृन्दा के लिये और अपने लिये दो वक्त की रोटी का इन्तज़ाम कर लाता।

आज रात जाने क्या हुआ। वृन्दा उसके सीने लग सुबक पड़ी।

'क्या हुआ?' वह आदमी उसका माथा चूमते हुए बोला।

'एक बात पूछूँ?'

'पूछ तो!'

'तुम कौन हो?'

'मैं!' एक पल के लिए आदमी रुका, फिर बोला, 'मैं तुम्हारा भगवान् हूँ! तुम्हारा संरक्षक हूँ!'

'कभी-कभी तुम्हारे बदन से बाजी के बदन वाली गंध आती है।' वृन्दा उसकी छाती को सहलाती बोली।

आदमी के बाहर और भीतर एक सन्नाटा सा घिर आया। सन्नाटा कहीं लम्बा न हो जाए, आदमी ने गहरी साँस ली। ज़रा रुक कर बोला, 'यह आदमी के बदन की गंध है। तुम जैसा सोचोगी, वैसा ही लगेगा तुम्हें।'

कुछ देर चुप्पी रही। वृन्दा सहसा बोली, 'हाँ, सो तो है...।' वृन्दा का स्वर डूबता सा चला गया। रात गहरा चुकी थी।

****

दोहे

रमेश तेलंग

मसि, कागद छूए बिना धन-धन हुए कबीर
हम पोथी लिखलिख मरे, फिर भी रहे फकीर॥

सागर को सब सौंप कर नदिया हुई विदेह
दिया बुझे नर क्यूँ करे वृथा धूम सों नेह-॥

रैन, दिवस खटती रहे, पल भर ना विसराम
सावन लागे जेठ में, जननी तुझे प्रनाम-॥

अपने दु:ख पर्वत लगें, औरन के तृणमूल
जरे, मरे, मति बावरी, गाड़े उर में शूल॥

मिलें विरल सन्जोग से, सुजन सखा जग माहि
नाव पड़ी मझधार में, डूबन देवें नाहि॥

सब गुन हैं प्रभु, आपके, हममें कहा शऊर
नैना होते आँधरे, दियो न होतो नूर॥

जब तक बसे न देह में, श्रमजल की मधुवास
धरे ना तब तक एक पग, जीवन में मधुमास॥

मारग पुरखन ने गढ़ो, हम तो बस रहगीर
सुजस धरो सिर और को, हम काहे के मीर॥

जहाँ दीनजन की खबर, लेवत आवे लाज
ऐसे निठुर समाज में, मीलों दूर सुराज॥

धूर नीर से जा मिली कर दी कीचमकीच
धँसे पंक में पग हुई बुद्धि बावरी नीच॥

तीन चका की गाड़िया, खीच रहे दो पाँव
घर आएँ जब रोटियाँ, भरे पेट को गाँव॥

घास-फूस की झोंपड़ी, सिर ऊपर तिरपाल
उजड़-उजड़ हतभागिनी, रही सदा बेहाल॥

लरज -गरज बादर घिरे, बरसे राजनिवास
सूनी आँखें मुँद गईं, लिए अनबुझी प्यास॥

पसरा हो घर में जहाँ, सन्नाटे का जाल
किलकारी शिशु की करे मौनों को वाचाल॥

बस्ती सब बारूद की, अम्बर बरसे आग
हाड़-माँस जल भुन गए, बचे जंग के दाग॥

खेल-खिलौने छोड़कर, थामे है बन्दूक
बच्चे कठपुतली बने, देखे दुनिया मूक॥

दिवस बीतते मौन में, जागत-जाती रैन
दंश वक्त का खा गए, जब से बूढ़े नैन॥

फैलाकर बाँहें दिया, जिनको खूब सनेह
उनकी किरपा पर पली, ढली उमर की देह॥

भरे कुटिलता मन करे, रोज नये छल-छंद
अब वसंत में भी कहाँ, शुभता का मकरंद॥

अर्थ नियंत्रित कर रहा, जीवन का व्यापार
गिरवी रख दी ज़िन्दगी, जब भी बढ़ा उधार॥

मेला कब का उठ गया, सूने हो गए घाट
अरे बावले, तू खड़ा, किसकी जोहे बाट ?

चमक-दमक से जो भरे वे तो हैं बाज़ार
सहज,सादगी को बना, अपना घर-संसार॥

ना कोई ताला जड़ा, न कुण्डी ही द्वार
बंदिश में रहता नहीं, मुक्त पवन-सा प्यार॥

देवे जो सो देवता, लेवे सो भिखमंग
बलिहारी जग की जहाँ दोनों घूमे संग॥

जहाँ दीनजन की खबर, लेवत आवे लाज
ऐसे निठुर समाज मे, मीलों दूर सुराज॥

000

संपर्क : फ्लैट नं. 581, सेक्टर 4, वैशाली,
ग़ाज़ियाबाद, उप्र 201012
ईमेल: rtailang@gmail.com

कैंपस लव

आकांक्षा पारे काशिव

जन्म: 18 दिसंबर, जबलपुर, मध्यप्रदेश
शिक्षा: स्नातकोत्तर (पत्रकारिता)
दैनिक भास्कर, वेबदुनिया डॉट कॉम, मलयालम मनोरमा की मासिक पत्रिका वनिता से होते हुए फ़िलहाल आउटलुक हिंदी में कॉपी संपादक के रूप में कार्यरत।
लेखन: प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'वागर्थ' के नवलेखन अंक में पहली बार कविताएँ प्रकाशित। तब से अब तक राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में लेखन जारी। हंस, नया ज्ञानोदय, वागर्थ, कथा चक्र, जनसत्ता, दैनिक भास्कर आदि कई प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित 'तीन सहेलियाँ, तीन प्रेमी' (कहानी संग्रह) प्रकाशित। भोपाल एवं दिल्ली दूरदर्शन से कविताओं के कार्यक्रम में शिरकत।
पुरस्कार- 14 वां रमाकांत कथा स्मृति सम्मान (2011), इला-त्रिवेणी सम्मान (2012)

मैंने अपने दोनों हाथों के बीच की उँगलियाँ तर्जनी उँगली पर चढ़ाई और इस 'क्रॉस द फिंगर' के टोटके के साथ उसका मोबाइल नंबर डायल कर दिया। इससे पहले भी कई बार उससे बात कर चुकी हूँ, लेकिन उस दिन कुछ खास था। कई बार होता है कि उसे फ़ोन नहीं लगता, नेटवर्क बिज़ी आता है। धड़कते दिल के साथ मन कह रहा था, फ़ोन न लगे तो ही अच्छा। पर मन का हमेशा हो जाए ऐसा कहीं संभव है क्या। मेरे कान से ज़्यादा दिल उसके फ़ोन पर बज रही घंटी सुन रहा था। घंटी जाते ही मन किया फ़ोन काट दूँ। पसोपेश में पड़ी काटूँ या चालू रखूँ कि खुद से बहस में पड़ी कोई फैसला लेती उससे पहले 'हाँ बोल' की उसकी आवाज़ कानों में पड़ गई। सेकंड भर के लिए मेरे हाथ काँप गए। मैंने बहुत सँभलते हुए कहा, 'तुमसे कुछ बात करनी है।'

'हाँ बोल।'

'नहीं वो क्या है न कि बात थोड़ी लंबी है। जब समय तो तब कहना।' मैं किसी भी सूरत में फ़ोन रख देना चाहती थी।

'टाइम है मेरे पास। तू बोल।'

'मैं कह रही थी कि...कि मैं जो भी पूछूँगी, बस हाँ या न में ही जवाब देना। और कुछ मत बोलना।'

'ओए सुबह भांग पी है क्या। हाँ या न में बोलना। पुलिस भी ऐसे नहीं बोलती। चल छोड़ बोल, क्या हुआ।'

'नहीं बस मेरी यही छोटी सी शर्त है। सिर्फ हाँ या न। दोनों में से जिसे चुनो मुझे कोई तफसील नहीं चाहिए।'

'अब बोल भी दे रे बाबा। सुबह-सुबह पकाए मत।' यह उसका स्टाइल है। धैर्य नाम की चिड़िया से तो उसका कोई संपर्क ही नहीं है।

'क्या हम...मेरा मतलब है क्या मैं तुम्हारे साथ हमेशा रह सकती हूँ'

'सुन तू...'

'मैंने कहा न हाँ या न'

'देखो तू जास्ती होशियार मत बन...'

'हाँ या न'

'..... '

लगभग आठ-नौ मिनट ऐसी ही खामोशी छाई रही और जब कोई और हलचल नहीं हुई तो मैंने फ़ोन काट दिया। यह मेरी उससे आख़िरी बातचीत थी। लेकिन यही मेरी प्रेमकथा का आख़िरी चैप्टर भी था। कॉलेज के पूरे साल भर जो खुमारी मुझ पर तारी रही थी उसका अंत हो गया था। इसके बाद होना तो यह चाहिए था कि मुझे बिसूरना था, टसुए बहाने थे, ये मोटे-मोटे। अँधेरे कमरे में बंद हो कर दर्दभरी ग़ज़लें सुननी चाहिए थीं या आत्महत्या की एक तरकीब तो सोचनी ही चाहिए थी। पर मैंने ऐसा कुछ नहीं किया। मैंने मिताली को फ़ोन लगाया और बस इतना ही कहा, 'मेरे को भी मना कर दिया।' हाँ यह बोलते हुए मेरी आवाज़ ज़रा उदास थी। फिर भी मिताली हँसी और जब मैंने ऐतराज़ जताया तो उसने आवाज़ थोड़ी संजीदा करते हुए बस इतना ही कहा, 'तेरे को भी।' उसकी आवाज़ में दु:ख कम और अचरज ज़्यादा था। मुझे दु:ख हुआ कि वह मेरे दु:ख में अच्छी तरह शामिल नहीं हो रही है, पर ठीक है जब उसने मिताली को मना किया था तब मैंने कौन सा किलो-दो-किलो दु:ख जता दिया था। सो मिताली ने 'टिड फॉर टैड' यानी जैसे को तैसा टाइप व्यवहार मुझ से कर दिया था। उसके बाद मैंने और मिताली ने थोड़ी गमभरी बातें की, अपने भाग्य को कोसा और दु:ख जताया कि आख़िर हम में क्या कमी है जो उसने मना कर दिया। अगर रविवार का दिन होता तो हम इस रिजेक्शन पर लंबा तफसरा कर सकते थे। पर हम दोनों को ही दफ्तर पहुँचना था सो हमने बातचीत की दूसरी किस्स के लिए रात का समय तय किया और मैंने अपने ताज़े रिजेक्शन को बासी ब्रेड के दो पीस के बीच दबाया और गम चबाते हुए चल दी।

हाँ तो आज उस गमनुमा रिजेक्शन

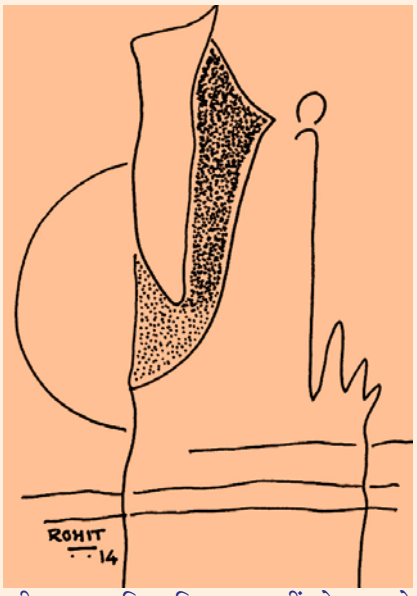

की याद इसलिए कि कुछ नहीं तो कम से कम तेरह साल बाद आज मैंने उसकी आवाज़ सुनी। आवाज़ उतनी बेपरवाह लग रही थी, पर कुछ ज़िम्मेदार भी नहीं लगी मुझे तो। अब इसे कोई मेरी जलनखोरी कहे तो कहे। भई जो सच्चाई है वह तो वही रहेगी। इस बार भी मैंने वही किया जो तेरह साल पहले किया था। पर उतनी उतावली में नहीं। मैंने मिताली को फ़ोन किया और पहले दो-चार यहाँ-वहाँ की बातें करने के बाद बताया कि 'उसका' फ़ोन आया था। मैंने उसका पर कुछ अतिरिक्त दबाव बनाया मगर यह मिताली काहिल ने कोई उत्सुकता नहीं दिखाई। मैं फ़ोन पर भी महसूस कर सकती थी कि वह निकम्मी उछल कर बिस्तर पर नहीं बैठी और न ही उसने अपनी आँखें चौड़ी कर कहा, 'हें। क्यों। बता न। पूरी बात बता न प्लीज़।' उसने उतने ही रूखेपन से कहा, 'अच्छा है चल दोबारा दोस्ती हो गई।'

'दोस्ती नहीं हुई उसे मुझ से काम है। इसलिए उसने फ़ोन किया।'

'हाँ तो ठीक है न काम के बहाने ही सही बात तो की।'

'अरे चोर तुझे बिलकुल गुस्सा नहीं आ रहा है। तेरह साल बाद उसने मुझे फ़ोन किया है। तेरह साल बाद। तू भूल गई उसने हमें अपनी शादी में भी नहीं बुलाया था।'

'तो हमने कौन सा उसे बुला लिया।'

'पर शुरुआत उसने की न। पहले उसने नहीं बुलाया तो हमने नहीं बुलाया।'

'अच्छा चल छोड़। तू तो ये बता उसे काम क्या आ गया उससे।'

'जब तेरे को कोई मन ही नहीं सुनने का तो मैं क्यों बताऊँ ।'

'अब ये नखरे तू अपने मियाँ को ही दिखाया कर। बात बतानी है तो बता वरना मैं फ़ोन रख रही हूँ। कल माही की पिकनिक है, उसे सुबह जल्दी स्कूल भेजना है।' मैंने फिर भी नखरे का एक कतरा रख दिया तो मिताली ने मुझे बहुत प्यार से गुड नाइट बोला और फ़ोन काट दिया। ये मिताली को कोई मन ही नहीं है जानने का कि उसका फ़ोन क्यों आया था। हुँह। मैं कल फिर मिताली को फ़ोन करूँगी और याद दिलाऊँगी कि एक वक्त था कि कैसे तुम उसके पीछे भोपाल तक चली गई थी और आज उसके बारे में सुनना भी नहीं चाह रही हो। आज भले मिताली उसके बारे में बात नहीं कर रही पर जब भी उसकी बात निकलती मैं और मिताली खूब हँसते। उस हँसी के बीच भी मिताली और मेरे मन में एक जैसी हूक उठती थी। कुछ अनकही सी। हमें उसका प्रेम न मिलने से ज़्यादा इस बाद का दु:ख था कि हम नकारे गए थे। यानी हमें रिजेक्ट कर दिया गया था। हम यानी मैं और मिताली।

उम्र के चालीसवें साल में यह हरकत भले ही बचकानी लगती है कि मुझे और मिताली को एक ही लड़का पसंद था, न सिर्फ पसंद बल्कि हम दोनों ही उस पर जान दिया करते थे। पर उस वक्त यही जीने का सहारा हुआ करती थी। पक्की सहेलियों का तमगा मिला होने के बावजूद जो एक बात हम दोनों ने एक-दूसरे से राज़ रखी थी वह बस यही बात थी। और जब हमने एक-दूसरे को नहीं बताई थी। और जब बताई तो बहुत देर हो चुकी थी। पर आश्चर्य कि जब हम दोनों ने उसके इश्क में गले-गले डूबे हुए एक-दूसरे पर अपने राज़ जाहिर किए तब भी हम झगड़े नहीं। अब हम दोनों के सामने एक प्रश्न आ खड़ा हुआ कि क्या किया जाए। पुरानी हिंदी फिल्मों की नायिका निम्मी की तरह हम दोनों में से कोई भी 'त्याग देवी' बनने को तैयार नहीं था। 'और बनना भी नहीं चाहिए। आख़िर हम दोनों

को ही अपने प्यार को परखना चाहिए।' नितांत घटिया फिल्मी किस्म का संवाद था पर मिताली ने बहुत संजीदगी के साथ कहा था। तो हम दोनों ने तय किया कि पहले मिताली अपने दिल की बात कहेगी उसके बाद मैं। पर परेशानी यह थी कि कॉलेज खत्म हो चुका था और हम सब अपने काम-धंधे पर लग चुके थे। मैं और मिताली अभी भी अपने शहर में ही थे जबकि वह अपने शहर भोपाल चला गया था। प्रेम का ऐसा ताप चढ़ा था हम पर कि हमने उससे पूछने के लिए भोपाल जाना तय किया। एक अख़बार में इंटरव्यू का झूठ बोला और सुबह की बस पकड़ कर चल दीं उसके शहर में। पर तब तक हमें पता नहीं था कि 'बड़े बेआबरू हो कर तेरे कूचे से हम निकले' टाइप का कुछ हमें शाम को दोहराना पड़ेगा। एक और दोस्त को मैंने सारी बात बताई और उसने कहा कि वह उसे अपने कमरे पर बुला लेगा और हम सीधे उसके कमरे पर पहुँच जाएँ। पूछते-पाछते जब हम वहाँ पहुँचे तो वह बगल में अपना हेलमेट दबाए धूप में खड़ा बतिया रहा था। हाय उसे देख कर मन फिर डोल गया। लगा कि मिताली को कहूँ, डील कैंसल। पहले मैं इसे अपने दिल का हाल बताऊँगी। पर ये शिवानी के उपन्यास पढ़-पढ़ कर दिमाग इतना बौरा गया था कि लगता था सच्चा प्रेम कहीं से भी ढूँढ़ निकालता है तो मिताली जैसे ही उसे अपने दिल की बात बताएगी वह फौरन कहेगा, मुझे तुमसे नहीं प्रियंका से प्यार है। वह दौड़ कर मेरे पास आएगा और मेरा हाथ पकड़ लेगा। मैं मिताली से कहूँगी कि देख यह होता है सच्चा प्यार। और फिर मैं घर जाकर पापा को सब बता दूँगी और बस एक-दूसरे के साथ जीवन भर।

मेरी सोच को झटका लगाते हुए कपिल ने कहा कि हम दोनों बाहर बैठते हैं और मिताली को उसके साथ कमरे में रहने देते हैं। मैं बाहर दालान में रखे स्टूल पर बैठ गई और मिताली अंदर चली गई। अंदर पता नहीं क्या हुआ पर जब वह बाहर निकली तो उसके चेहरे पर बारह बज रहे थे और हम फौरन ही वहाँ से निकल गए। उसके बाद बस वह हमारे किस्सों तक सिमट गया। हम जब भी उसके बारे में बात करते, एक-दूसरे को दोष देते, 'तू वक्त पर बता देती तो कम से कम एक को तो मिल जाता।' पर हम दोनों ही जानते हैं वह किसी को नहीं मिलता। हम उसकी गिनती में कहीं नहीं थे। न पहले न अब।

मिताली के उसे प्रपोज करने के कोई दो साल बाद जब मेरे घर मेरी शादी की बातचीत शुरू हुई तो मुझे भी इश्क के उस कीड़े की याद आई जो अब तक मेरे दिमाग में कुलबुला रहा था। मैंने मिताली को कहा, कि वह आज भी मुझसे बात तो करता ही है न। तो मुझे लगता कि मुझे भी एक बार उससे पूछ लेना चाहिए। मिताली ने समझाया भी कि यदि ऐसा कुछ होता तो वह अब तक कह चुका होता। पर मैं उसकी याद में ऐसी लैला बनी थी कि मैंने भी फ़ोन पर उससे पूछ ही लिया। होना तो क्या था, कद्दू की जड़ उसके बाद मेरी भी उससे बात बंद हो गई। यहाँ तक रहता तो ठीक था, पर उसने यह बात अपने परम मित्र को बताई और उस परम मित्र ने हमारे पूरे ग्रुप को। उसके बाद मैं और मिताली एक तरफ बाकी सब दूसरी तरफ। सुना उसकी शादी हो रही है। हमें उम्मीद थी कि वह हमें ज़रूर बुलाएगा। हमारे सभी दोस्त गए पर उसने हमें शादी में नहीं बुलाया। उस पूरे ग्रुप में मैं तो फिर भी कई दोस्तों से बात करती रही पर मिताली की दोस्ती बस मुझ तक सिमट गई।

पहले हमें भी लगता था कि वह कैंपस लव था। पर जब कॉलेज छोड़ देने के बाद भी, नौकरी में आ जाने के बाद भी वह बदस्तूर वैसे ही याद आता रहा, उतनी ही शिद्दत महसूस होती रही तो लगा नहीं कुछ तो था उस रिश्ते में। कोई कशिश तो थी कि आज भी यदि वह फ़ोन करे तो लगता है, कॉलेज का वहीं गलियारा है और उसे अकेला खड़ा देख कर मैं उसके पास जाकर अपना परिचय दे रही हूँ। वह झिझकते हुए-से मुस्कराते हुए अपना हाथ आगे बढ़ा कर कह रहा है, 'हाय आय एम परितोष। परितोष कुलकर्णी।'

****

ग़ज़ल

देवेन्द्र आर्य

तुझ को भले पता न हो ,पेड़ों को पता है
किस ओर पीठ है तेरी किस और हवा है

बारिश में भींगने को मचलने लगा मौसम
शायद तुम्हारी आँखों में घिर आई घटा है

शर्मिंदगी सी लगती है तब नींद को खुद पर
जब रात पूछती है 'अभी कितना बजा है'

स्वागत में जिसके लोग खड़े घुटने टेक कर
सोचो कभी वो शख़्स भी घुटनों पे चला है

हसरत ही रह गई कि कोई बात हो ऐसी
मैं भी कहूँ कि वाकई धरती पे ख़ुदा है

मेरी तबाहियों का सबब थे जो कुछ एक लोग
सुनते हैं सुन के उनको भी अफ़सोस हुआ है

लफ़्ज़ों की या हुनर की या बाज़ार की बोलो
भाषा अगर ख़ामोश है तो किसकी ख़ता है

●

जिस दिन हमें पंख उग आए
लोगों ने पिंजरे बनवाए

कोई तो सपना हो ऐसा
जो सपनों की प्यास बुझाए

बाबुल नहीं चाहते थे वह
लौट के वापस मयके आये

गन्ना गेहूँ धान छोड़ के
हमने भी मशरूम उगाए

अदबी दुनिया में आये हो
साथ में आलोचक भी लाए ?

A -127 आवास विकास कालोनी ,शाहपुर
गोरखपुर -273006
मोबाइल - 09794840990 , 7408774544
मेल -devendrakumar.arya1@gmail.com

बिग बॉय

सपना मांगलिक

आगरा निवासी सपना मांगलिक आगमन साहित्यिक पत्रिका की उप संपदिका हैं। इन दिनों documentary निर्माण में सक्रीय। जीवन सारांश समाज सेवा समिति, शब्द-सारांश (साहित्य एवं पत्रकारिता को समर्पित संस्था) की संस्थापक हैं। पापा कब आओगे, नौकी बहू (कहानी संग्रह), सफलता रास्तों से मंजिल तक, ढाई आखर प्रेम का (प्रेरक गद्य संग्रह), कमसिन बाला, कल क्या होगा, बगावत (काव्य संग्रह), ज़ज़्बा-ए-दिल भाग -प्रथम, द्वितीय , तृतीय (ग़ज़ल संग्रह), टिमटिम तारे, गुनगुनाते अक्षर, होटल जंगल ट्रीट (बाल साहित्य)। तुम को ना भूल पाएँगे (संस्मरण संग्रह), स्वर्ण जयंती स्मारिका (समानांतर साहित्य संस्थान) प्रकाशित कृतियाँ हैं।

संपर्क : एफ- 659,बिजलीघर के निकट, कमला नगर, आगरा 282005, यूपी।

ईमेल: sapna8manglik@gmail.com

मोबाइल 09548509508, 7599163711

मीनू अपने तीन वर्षीय पुत्र को डाँटते हुए ,ज़ोर -ज़ोर से चीख रही थी ''गोलू ..आख़िर कब तक छोटे बेबी बने रहोगे, कब तक ऐसी अजीब ओ गरीब, दूसरों को परेशान कर देने वाली शरारतें करते रहोगे। अब तुम तीन साल के हो गए हो, अब तुम बेबी नहीं बिग बॉय हो, समझे! इसलिए गन्दी हरकतें और चीज़ों को तोड़ना, फाड़ना, बर्बाद करना बंद करो, तुम्हारी हरकतों की वजह से तुम्हें अपने साथ कहीं ले जाने से पहले सौ बार सोचना पड़ता है। हर चीज़ को छेड़ना, दूसरों से बिना पूछे उनका सामान उठाना और तोड़ना, आख़िर कब सुधरोगे तुम''?

''पप्पा पापा बचाओ मम्मी ने माला ऊँ ऊँ..... '' गोलू रोया।

उसकी शिकायतों से मीनू का गुस्सा बढ़ गया और उसने एक तमाचा गोलू को रसीद करते हुए और उसके कान उमेठते हुए बोली ''अच्छा शिकायतें करने की समझ है ,पीज़ा और चिप्स की समझ है, मगर मम्मी की बात तुम्हें समझ नहीं आती। पढ़ाई तुम्हें समझ नहीं आती। मारूँ एक और अभी, हाँ....'' ?

इतने में चिराग अपनी फ़ैक्टरी से लौटा और उसने देखा कि मीनू गोलू के कान पकड़ उसे डाँट रही है, तो उसने फ़ौरन गोलू को उससे छुड़ा कर अपनी गोद में ले लिया और मीनू को डाँटते हुए बोला ''क्यों मेरे बेटे को बिग बॉय - बिग बॉय बोल-बोलकर उसे बचपन में ही बुड्ढा बनाना चाहती हो। गोलू अभी छोटा सा बेबी है, तुम प्लीज़ उसे ज़बरदस्ती बिग बॉय मत बनाओ। उसका बचपन मत छीनो मीनू।'' और फिर गोलू को दुलारते हुए बोला ''मम्मा गन्दी, मेरे बेटे को मारती है।'' पिता की शय मिलते ही नन्हा गोलू भी उसका अनुसरण कर बोला ''मम्मा गंदा ,गोलू मालता है, पापा पीज़ा नहीं लाना और चोको भी नहीं देना।''

''हाँ बेटा हम दोनों ही पीज़ा और चोको खाएँगे, मम्मा को बिलकुल नहीं देंगे, मेरे बेटे को मारती है।'' चिराग गोलू को दुलारता हुआ बोला। दोनों बाप-बेटे की जुगलबंदी से मीनू का गुस्सा और ज़्यादा भड़क गया और गोलू को भूल वह चिराग पर भड़क उठी ''तुम्हारी वजह से चिराग, गोलू अभी तक खुद को बेबी समझता है। तुम इसको कभी बड़ा नहीं होने दोगे, और आख़िर तुम कैसे उसे बड़प्पन और ज़िम्मेदारियों का अहसास कराओगे। तुम खुद इतने बड़े होकर भी गैर ज़िम्मेदार हो। तुम्हारे अन्दर अभी तक परिपक्वता का अभाव है।''

चिराग मुस्कुराते हुए लापरवाही से बोला-''और कुछ ? देख बेटा तेरी मम्मा तेरा

गुस्सा अब पापा पर निकालने लगी। फाइटर प्लेन जो है।''

मीनू का गुस्सा पराकाष्ठा को पार कर गया वह चीखी ''बस, और क्या सिखाओगे तुम बच्चे को? तुमने खुद कभी अपने माँ-बाप की इज़्ज़त नहीं की। लोग सही कहते हैं कि तुम इतने पत्थर दिल हो, कि अपने पापा की मौत के समय भी तुम्हें दु:ख नहीं था, बिलकुल भी नहीं रोए थे। तुम्हें दुनिया में किसी से कोई लगाव नहीं।''

''यह क्या कह रही हो मीनू ? तुम्हें पता है, मैं पापा को प्रेम करता था या नहीं ? मुझे उनकी मौत का दु:ख हुआ था या नहीं ?'' चिराग हैरान रह गया। माँ और पापा को आपस में उलझता देख नन्हा शरारती वहाँ से चुपचाप खिसक लिया।

''मीनू मैं समझता था, कि कोई और मुझे समझे न समझे, तुम ज़रूर मुझे समझती होगी; मगर आज पता चला, तुम भी औरों की ही तरह मुझे नहीं समझ पाई।''

''इसकी वजह तुम खुद हो चिराग, तुम कभी किसी से सहानभूति नहीं रखते, गोलू के सिवा किसी के भी प्रति दायित्व का अहसास मैंने तुम्हारे अन्दर नहीं देखा, बस हमेशा बचकानी छेड़छाड़, दूसरों को चिढ़ाना, खिजाना। आख़िर तुम ऐसे क्यूँ हो चिराग? तुम्हारे अन्दर वो परिपक्वता क्यों नहीं है; जो इस उम्र में होनी चाहिए?'' मीनू गुस्से में बोलती गई।

''क्योंकि मुझसे मेरे अपनों ने ही मेरा बचपन छीन कर ज़बरदस्ती परिपक्व बना दिया गया था। मेरे बचपन की प्लास्टिक सर्जरी कर मुझे घर का बुज़ुर्ग बना दिया गया था। मेरे सपने, मेरी ख़्वाहिशें, मेरी परेशानियाँ किसी ने नहीं समझी। किसी ने साथ नहीं दिया उस वक्त मेरा? फिर मैं क्यूँ किसी के भी प्रति खुद को ज़िम्मेदार समझूँ ?तुम कहती हो कि मैं अपने पापा को प्यार नहीं करता था? उनकी मौत पर नहीं रोया! मगर कभी सोचा मैं ऐसा क्यूँ हो गया था ? आज मैं सब तुम्हें बताता हूँ, जो मैंने कभी किसी को नहीं बताया।'' आहत चिराग अपने दिल की सात परतों को एक -एक करके पत्नी मीनू के समक्ष खोलने लगा.....

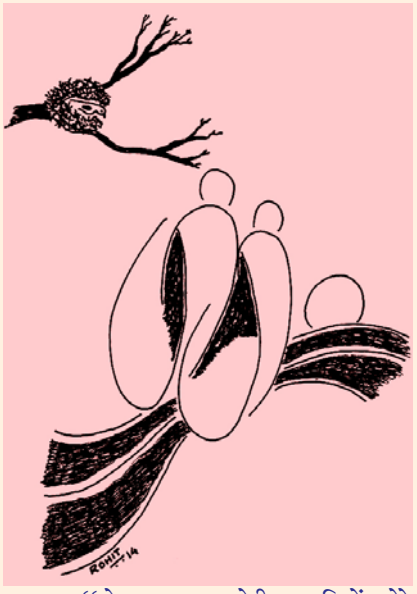

''मेरा बचपन, मेरी ख़्वाहिशें, मेरे खेल-खिलौने, सब के सब पिताजी की चिता के साथ ही धू-धू करके जलने लगे और मैं बेबस, निरीह बड़ी लाचारी के साथ उन्हें जलते देख रहा था। मैं उस समय चीखना-चिल्लाना चाहता था, मगर आवाज़ गले में घुटकर रह गई। मैं रोना चाहता था मगर जल्लाद आँसू मेरी आँखों के कोरों में ही पड़े-पड़े सूख गए। कुछ नहीं कर पा रहा था मैं, बस लोगों को करते देख रहा था, अजीब-अजीब से आडम्बर; जिनका वास्तविक ज़िन्दगी में कोई महत्त्व नहीं होता, पर वे कर रहे थे। मेरे चारों ओर लोग जमा हो गए थे और मुझे पगड़ी पहनाते हुए कह रहे थे कि बेटा चिराग अबसे तुम इस घर के मुखिया हो। जो लोग कल तक मुझे बच्चा कहते थे, उन्होंने मेरे बचपन को मुझसे छीन कर एक पल में मुझे इतना बड़ा बना दिया। कुछ लोग उस वक्त नसीहत दे रहे थे और बाकी तमाशबीन की तरह मेरे मुखिया बनने का तमाशा देख रहे थे। मुझे अपने मामा की शादी का स्मरण हो आया था; जब वह घुड़चढ़ी के लिए तैयार हो रहे थे। तब उन्हें भी लोग ऐसे ही घेरे खड़े थे और पगड़ी पहना रहे थे जैसे अब मुझे ....,यह सोचते ही मुझे बहुत ज़ोरों की हँसी आई, मगर मैंने अपनी हँसी दबा ली; क्योंकि लोग कहते कितना मूर्ख लड़का है, पिताजी का देहांत हो गया और अपनी माँ और बहन को ढाढ़स बँधाने के बजाय हँस रहा है। मैं पहले इतनी बड़ी- बड़ी और दूरदर्शितापूर्ण बातें नहीं सोचता था। मगर उस पल से सोचने लगा, आख़िर मुझे घर का मुखिया जो बना दिया गया था। वह मेरी अंतिम हँसी थी, फिर कभी मुझे इतनी ज़ोर से किसी बात पर हँसी नहीं आई। मेरे सुन्दर घुँघराले बाल पिताजी की मौत के बाद कटवा दिए गए। मुझसे अपनी ही शक्ल आईने में नहीं देखी जा रही थी। हर पल यही सोचता कि मेरे हम उम्र चचेरे, ममेरे भाई-बहन मुझे उस सफाचट खोपड़े में देख मन ही मन मुस्कुरा रहे होंगे। स्कूल में सब मेरा मज़ाक उड़ाएँगे। पता नहीं मेरे वही सुन्दर घुँघराले बाल दोबारा कितने महीनों में आएँगे? तेरह दिन तक मुझे मेरी टीशर्ट और शॉर्ट्स नहीं पहनने दिए गए। मैं बनियान और लुंगी में वह सब कार्य करता था; जो कि मेरे लिए बहुत डरावने थे। रात को सोते समय भी उन्हीं क्रियाओं के बारे में मुझे सपने आते और मैं डर जाता। कुछ ज़मीन पर सोने की वजह से भी मुझे नींद नहीं आती थी। इससे पहले कभी ज़मीन पर नहीं सोया था। मन करता कि माँ से जाके लिपट जाऊँ, पर माँ के साथ बहन सो रही होती।''

''इन तेरह दिनों में मैंने महसूस किया कि सबको मुझसे ज़्यादा मेरी माँ और बहन की चिंता थी। वो दोनों मुझसे बड़ी थीं, फिर भी लोग उनसे अधिक सहानभूति दिखाते और मुझे मेरे कर्त्तव्य समझाते। क्यूँ ?वो स्त्रियाँ थी और मैं पुरुष आकार का जीव, शायद इसीलिए मेरे आस-पास कोई भी ऐसा नहीं था; जो मुझे प्रेम से गले लगाए, मेरी पीठ थपथपाए, ज़रूरत के समय मेरे साथ होने का संबल मुझे दे। मेरी अपनी माँ को भी मुझसे ज़्यादा चिंता मेरी बहन और उसके विवाह की थी। पिताजी की उठावनी के बाद लोग फ़ैक्टरी खुलवाने की रस्म करने गए और उनकी सलाह या सही कहूँ तो हुक्म जैसा ही लग रहा था। फ़ैक्टरी सँभालने और उसे आगे बढ़ा पिताजी के नाम को रोशन करने का ज़िम्मा सौंपा गया। उस फ़ैक्टरी का, जिसका मुझे क ख ग तक नहीं आता था। उसे मुझे आगे बढ़ाना था। मेरी दिलचस्पी उसमें हो न हो, मगर उसमें मुनाफ़ा कमाकर अपने पिताजी का नाम रोशन करना था।''

''मेरे ज़हन में कई सवाल उमड़े थे जैसे कि अगर मैं फ़ैक्टरी सँभालूँगा, तो स्कूल कैसे जाऊँगा? इंजीनियर बनने का सपना तो पिताजी की वजह से टूट ही गया, अब क्या काम भी अपनी पसंद का नहीं कर पाऊँगा? इन सब सवालों के जवाब समझ नहीं आ रहे थे और कोई इन्हें हल करने वाला भी नहीं था। कोई मार्ग दर्शक नहीं था। नितांत अकेला था मैं। सिर हर समय भारी रहता। जी मिचलाता मानों उलटी आ जाएगी। ऐसा नहीं था मीनू ,कि मैं पिताजी को प्रेम नहीं करता था। बहुत करता था। हर बच्चा अपने माता-पिता से प्यार करता है; क्योंकि वही उसकी हर ज़रूरत पूरी करते हैं। वह दुनिया में सबसे अधिक खुश किसी के साथ रह सकता है तो अपने माँ-बाप के साथ ही रह सकता है। मैं भी पापा से बहुत प्यार करता था; लेकिन पापा हर उस पुरुष की तरह सोच रखते थे, जिन्हें अपने बच्चे को दुलारना, गोद में लेना और चूमना स्त्रियों का काम लगता था। जिसे करने की उनका पुरुषत्व गवाही नहीं देता था। वह अपनी बीमारियों से या अपनी सीमित उम्र से वाकिफ थे। शायद इसीलिए मुझे बचपन में ही अपने चालीस बसंत का तजुर्बा सौंप देना चाहते थे। मगर मैं उस समय एक नासमझ किशोर था। और मेरी अपनी एक ख़्वाबों-ख्यालों की दुनिया थी; जिसमें मुझे किसी का भी हस्तक्षेप अच्छा नहीं लगता था। मुझे साइंस और मैथ लेना था। मैं इंजीनियर बनना चाहता था। जॉब के बहाने अलग-अलग शहर घूमना और दुनिया देखने का स्वप्न था मेरा। टूट गया मीनू। मेरे इस स्वप्न को मेरे ही पापा ने तोड़कर चकनाचूर कर दिया, जब उन्होंने डाँटकर कॉमर्स का फॉर्म भरने का मुझे हुक्म सुनाया। मैं अपने ही जीवन की दिशा खुद निर्धारित नहीं कर सका। पहले पिताजी ने की और उनकी मौत के बाद परिस्तिथियों ने मेरा भाग्य लिखा।''

''यहाँ से मेरे और पापा के बीच मतभेद की एक गहरी खाई बन गई, जो समय के साथ -साथ फैलती गई। जिसे पाटने की न कभी पापा ने कोशिश की, न ही मैंने। वह जो कुछ भी कहते, विरोध स्वरुप मैं उल्टा ही करता। पढ़ाई से जी उचट गया था मेरा। पापा मुझे चिढ़ाने और घर में अपनी अहमियत सिद्ध करने के लिए मेरे सामने बहन की प्रशंसा करते और उसके लिए किसी भी चीज़ की मनाही नहीं थी। मुझे दोस्तों के साथ उठने-बैठने पर बिगड़ने की संज्ञा दी जाती और बहन को स्कूल टूर पर और उसकी सखियों के घर आराम से भेजा जाता। एक बार इस विषय पर अपने विचार रखने की हिम्मत की, तो पापा ने ज़िद्दी और बदज़ुबान कहकर डाँट दिया। इसलिए मुझे लगता था कि पापा मुझे प्यार नहीं करते और उनके जाने के बाद मुझे मन ही मन उन पर क्रोध आ रहा था कि क्यूँ चले गए इतनी जल्दी अपना सारा बोझ मेरे कन्धों पर डाल कर। और, अगर इतनी जल्दी जाना ही था, तो कम से कम अपने जीते जी मुझे इतना लाड़-प्यार तो दे जाते ताकि मन किसी और के प्यार तथा सहानभूति के लिए नहीं तड़पता। मैं अपने दायित्व दिल से निभा पाता। पापा के जाने के बाद रिश्तेदार कभी-कभी मेरी बहन को अपने साथ घुमाने ले जाते, मगर मुझे कोई पूछता भी नहीं था। क्योंकि मुझे फ़ैक्टरी जो सँभालनी होती थी। जिन मज़दूरों के संग खेलता था, अब मुझे उन्हें हुक्म देना होता था; जिसे वह मानते नहीं थे। जिन लोगों से बिजनेस डील करता, वह मेरी नासमझी और लड़कपन का फायदा उठाते। मुझसे लागत से भी कम में काम करवाते; जिससे अथक मेहनत के बावजूद भी मैंने उन शुरूआती वर्षों में कमाने के बजाय गँवाया अधिक। और पापा का नाम खराब ना हो, इसलिए उस लॉस की पूर्ति करने के लिए पार्ट टाइम क्म्फेशनरी आयटम सप्लाई करने लगा। पढ़ाई करने का समय नहीं मिलता था। प्राइवेट परीक्षा का फॉर्म भरा। हाँ, व्यापार से यह लाभ ज़रूर हुआ कि बिना पढ़े ही कॉमर्स में गुड सेकंड ले आता था। इस तरह बी कॉम पूरी की। और फिर जिस ज़िम्मेदारी का अहसास मुझे हर पल, हर घड़ी दिलाया जाता था, वो बहन की शादी कर पूरी की।''

''तो क्या आज भी तुम्हारे मन में पापा के लिए उतनी ही शिकायतें और कड़वाहट है चिराग ?'' मीनू ने सहज होते हुए पूछा।

''नहीं मीनू अब बिलकुल भी नहीं, जब से गोलू मेरी गोद में आया है। मैं एक पिता की बच्चे के भविष्य को लेकर चिंता और कठोर बनकर ही सही, पुत्र को कामयाबी का पाठ पढ़ाने की मंशा को समझ पाया हूँ। बल्कि अब तो मुझे ग्लानी होती है कि मैंने पापा से उस समय इतनी दूरी क्यूँ बनाई, जब वह बीमार थे? उन्हें स्ट्रोक जो चुका था, जिससे वह एक बार पेरालाइसिस से पीड़ित हो चुके थे। मैंने उनकी गोद में सिर रखकर क्यों नहीं कहा -पापा चिंता मत करो, मेरे रहते आपको कुछ नहीं होगा। इस घर को कुछ नहीं होगा। मैं आपके कंधे से कंधा मिलाकर इस घर के दायित्व संभालूँगा। अब लगता है अगर मैंने अपनी ज़िद छोड़ पापा को समझा होता, तो पापा हार्ट अटेक से यूँ ऑफिस में अकेले जूझते न चले गए होते, बल्कि कुछ साल और हमारे साथ होते।'' चिराग यह कहकर चुप हो गया। अतीत की कड़वी यादों से उसका दिल भर आया। उस पत्थर दिल कहे जाने वाले पुरुष की आँखों से गर्म धार लावा बन बहने लगी।

मीनू की आँखें भी बरस पड़ीं-''साँसें तो पूर्व निर्धारित होती हैं चिराग, हमारे चाहने से कभी बढ़ती नहीं और कम भी नहीं होती। जो भी हुआ, उसमें किसी का कसूर नहीं था। सब किस्मत का किया धरा था।'' कह कर उसने चिराग को गले लगाया तो चिराग भर्राती आवाज़ में बोला- ''मीनू इसीलिए तुन्हें हमेशा अपनी ख़्वाहिशों का बोझ नन्हें गोलू पर डालने से मना करता हूँ। मैं चाहता हूँ, जब तक मैं ज़िंदा हूँ वह अपने बचपन और किशोरावस्था का भरपूर आनंद ले। उसकी राहें हम नहीं वरन् वह खुद तय करे। उससे उसका बचपन मत छीनो..... बिग बॉय बाद में उसे वक्त बना देगा। अभी उसे मेरा छोटू सा बेबी रहनो दो प्लीज़।''

''मत रो चिराग आज से मेरे एक नहीं दो बच्चे हैं।'' चिराग रोते-रोते भी हँस पड़ा और इतने में उनका तीन वर्षीय पुत्र उन दोनों के बीच में आने की कोशिश कर तुतलाते हुए बोला- ''मम्मी, पापा, बेबी... फ़ैमिली... फ़ैमिली...।''

****

श्यामली जीजी

रेखा राजवंशी

ऑस्ट्रेलिया की लेखिका, कवयित्री व रेडियो कलाकार रेखा राजवंशी सिडनी में स्पेशल नीड्स के बच्चों की टीचर हैं। सिडनी विश्वविद्यालय में प्रौढ़ शिक्षा के अंतर्गत हिन्दी पढ़ाती हैं। अनुभूति के गुलमोहर, कंगारुओं के देश में (काव्य संग्रह), ये गलियों के बच्चे (शोध ग्रन्थ), छोटे-छोटे पंख (बाल कविताएँ), ऑस्ट्रेलिया के 11 कवियों के काव्य संग्रह का संपादन और एकता का संकल्प का सह संपादन किया है। दिल्ली में आल इंडिया रेडियो के नाटक, बाल और महिला विभाग की कलाकार का अनुभव रखने वाली रेखा ने सिडनी में एस बी एस रेडियो ऑस्ट्रेलिया में सात साल तक कार्यक्रम योगदान दिया। वे सिडनी, मेलबर्न, केनबरा तथा वूलूनोंग शहर में काव्य पाठ कर चुकी हैं। NAATI (ऑस्ट्रेलियन अनुवाद संस्था) से अनुमोदित अनुवादक। कुछ सरकारी विभागों व वेबसाइटों के लिए अनुवाद के अलावा ऑस्ट्रेलिया में एबोरीजनल एनीमेशन फिल्म की कहानियों का अनुवाद किया है। और उसके लिए इन्हें ऑस्ट्रेलिया में राष्ट्रीय स्तर का सम्मान मिला है।

सम्पर्क: rekhalok@hotmail.com

ये किस्सा है साँवली सलोनी, बड़ी-बड़ी आँखों वाली, कान्वेंट में पढ़ी लिखी, अंग्रेज़ी हिन्दी दोनों भाषाओं में निपुण, आकर्षक महिला श्यामली जीजी का।

श्यामली, जब मैं उनसे मिली तो वे अकेली थीं। अकेली तो थीं पर लोगों की भीड़ अपने चारों ओर इकट्ठी करने में देर नहीं लगाती थीं। एक खासियत थी उनमें जिसे हम अंग्रेज़ी में कहते हैं 'गिफ्ट ऑफ़ गैब', जब चाहें जिसे चाहें अपनी बातों के जाल में अटका लेना या कहूँ रिझा लेना।

जब मैं पहली बार अपनी एक सहेली माया के माध्यम से उनसे मिली तो वे एक कठिन दौर से गुज़र रहीं थीं। बेहद अकेली और डिप्रेस्ड। माया के मुँह से बार-बार सुना- 'श्यामली जीजी ये...श्यामली जीजी वो... बहुत बड़े, बहुत अमीर डॉक्टर से शादी हुई थी उनकी, दूसरी शादी, अब वो टूट गई, तलाक हो रहा है' वगैरह-वगैरह। तब मेरे पति नौकरी के सिलसिले में बाहर थे और मैं अपने दोनों बच्चों के साथ अकेली थी। जहाँ सिडनी की खूबसूरती मुझे लुभा रही थी, वहीं दो छोटे बच्चों के साथ नए देश में व्यवस्थित होने की चिंता भी थी। सबकी देखा- देखी मेरे लिए भी वो 'श्यामली जी' बन गईं। नए शहर में मुझे उनकी संगत अच्छी लगी, उनकी नज़रों से सिडनी देखने और समझने में मदद मिली।

धीरे-धीरे पता लगा कि उनकी पहली शादी काफी कम उम्र में हो गई थी तब वे करीब उन्नीस-बीस साल की थीं। शादी के बाद वे मुंबई चली गईं, पर शादी समझौता अधिक रही, ख़ुशी कम। वे एक निडर, निर्भीक स्वच्छंद स्त्री, जीवन से भरपूर और उनके पति इसके विपरीत गंभीर, काम में व्यस्त और कम रोमांटिक। वे बीस साल पहले अपने दो बेटों और पति के साथ सिडनी आई थीं। छोटा सुखी परिवार। सब कुछ ठीक तो था, पर वे खुश न थीं। नए देश की परेशानियों ने उन्हें झकझोर दिया। बच्चे छोटे थे, पति की कंपनी कुछ दिन बाद बंद हो गई, सो खुद कुछ करने की ठानी।

कुछ समझ न आता था कि क्या किया जाए। पहले कभी नौकरी तो की नहीं, कोई और कोर्स आदि करने का भी मौका न मिला। बी ए करते ही माँ-बाप ने इंजिनियर ढूँढ़ा और शादी कर दी। खाना बनाने में निपुण थीं, जो आता, उनके बनाए खाने का कायल हो जाता।

एक दिन उनकी सहेली मिसेज़ मेहरा ने पूछा, "श्यामली, केटरिंग का काम क्यों नहीं करतीं"

"पर कैसे? कौन देगा मुझे आर्डर?" उन्होंने पूछा।

"पहला आर्डर तो मेरा ही लो, मेरा काम भी हो गया और तुम्हारी शुरुआत भी हो

गई" मिसेज़ मेहरा हँस दी। घर जमाया, बच्चों की देखभाल करने लगीं। शायद काम की अधिकता से वे परेशान हो गईं। उस दिन उनका बनाया खाना हिट हो गया। सबने खूब तारीफ़ की। उन दिनों इतनी सुविधाएँ विदेश में थीं नहीं, सो उनका काम चल निकला। ज़िन्दगी में पहली बार अपनी कमाई के पैसे मिले बड़ी खुश हुईं।

पर दो-तीन साल में केटरिंग के इस काम से तंग आ गईं। सोचा, "भला ये भी कोई बात हुई? दिन भर खाना बनाते रहो? ये भी क्या ज़िन्दगी है?" अब तक अनेक महिला, पुरुष मित्र बन चुके थे। उनकी एक मित्र प्रमिला ने सुझाया- "श्यामली, अंग्रेज़ी इतनी अच्छी बोलती हो, कॉल सेंटर में क्यों नहीं एप्लाई करतीं, वेकेंसिज़ निकलीं हैं अभी।" बस, आइडिया क्लिक हो गया, आनन-फानन रेज़्यूमें बनाया, कवर लैटर भी बना, भारतीय परिधान में, लम्बी बिंदी लगाए इंटरव्यू के लिए पहुँच गईं। उम्मीद तो नहीं थी पर उनकी फर्राटेदार अंग्रेज़ी और बक-झक ने कुछ ऐसा करिश्मा किया कि फ़ोन कम्पनी के कॉल सेंटर में उनका चयन हो गया। दोनों बच्चे बड़े हो रहे थे। प्रशांत ग्यारह का था और सुशांत नौ का। पति को भी दूसरी नौकरी मिल गई। सब कुछ ठीक ही तो था, बहुत नहीं तो घर का खर्च तो निकल रहा था, फिर ऐसा क्यों हुआ कि उनके अट्ठारह साल की शादी-शुदा ज़िन्दगी में हल-चल मच गई।

एक दिन कॉल सेंटर में फ़ोन लगा रहीं थीं 'हेलो, सर, माय नेम इस श्यामली, आई एम कॉलिंग फ्रॉम ओप्टस'

'व्हाट कैन आई डू फॉर यू?' दूसरी तरफ से रूखी सी आवाज़ आई।

श्यामली जी इस तरह के लोगों से निपटना सीख चुकीं थी सो प्यार से फ़ोन की डील बताई।

दूसरी तरफ़ वाला आदमी पूछने लगा, 'व्हाट विल आई गेट?'

श्यामली जी ने कहा 'अच्छी सर्विस और थोड़ी सस्ती डील।'

बात आगे बढ़ी, क्लाइंट उनकी बातों से कन्विंस लगा और अगले दिन इसी वक्त फ़ोन करने के लिए कहा।

जाने क्या बात थी कि इस बार, शायद पहली बार श्यामली जी दो बजने का इंतज़ार करने लगीं। ठीक दो बजे फ़ोन मिलाया, क्लाइंट ने फ़ोन उठाया, 'सो श्यामली, राइट ऑन टाइम' दोनों हँस पड़े। बात आगे चल निकली और क्लाइंट ने बताया कि वो एक डॉक्टर हैं, और बातों-बातों में ये भी पूछ लिया कि क्या श्यामली उनके क्लीनिक में काम करेंगी, क्योंकि उन्हें अपने क्लीनिक में उनके जैसी समझदार और पढ़ी-लिखी रिसेप्शनिस्ट की ज़रूरत है। और ये भी कह दिया कि अगर श्यामली जी तैयार हैं तो अगले दिन इंटरव्यू के लिए आ सकती हैं।

श्यामली जी की आँखों और वाकपटुता के जादू में ऐसे फँसे कि अच्छी तनख्वाह में नौकरी का ऑफर दे दिया। डॉक्टर चंद्रन, शायद पैंतालीस साल के होंगे, लम्बे और गठीले शरीर के आदमी, श्री लंका से बरसों पहले सिडनी आकर बस गए थे। विधुर थे, पहली पत्नी श्री लंका से थीं; जो अब नहीं रहीं, उनसे एक बेटा था; जो हॉस्टल में था। दूसरी शादी एक ऑस्ट्रेलियन से की, जो चल न सकी। घर में माँ थीं, जिन्हें सहारा चाहिए था। नौकरी के साथ-2 दोनों कब करीब आ गए, पता ही न चला। श्यामली जी के चंचल बातूनी स्वभाव से अकेले डाक्टर की सूनी दुनिया में रौनक आ गई, और श्यामली जी को जैसे कोई सहारा मिल गया। मन में दबा रोमांस पनपने लगा, लगने लगा कि यही था; जिसका उन्हें इंतज़ार था, भूलने लगीं कि एक परिवार है, दो बच्चे हैं, ज़िम्मेदारी है। एक नई दुनिया उन्हें मिल गई और वे उसमें डूबने लगीं। सज-धज के रहना तो उन्हें पसंद था ही, और भी ज़्यादा निखर उठीं। पति ने देखा, कुछ-कुछ समझ में आया, कुछ नहीं आया, पत्नी का यूँ खुश रहना अच्छा नहीं लगा। मन में असुरक्षा पनपने लगी, हीनता ने उन्हें घेर लिया।

घर में लड़ाई शुरू हो गई- 'घर में बच्चे हैं इसे सजने से फुर्सत नहीं है।'

'अपने कपड़ों की फ़िक्र है बस, बाकी किसी की नहीं।'

'इतनी देर से घर क्यों पहुँचीं?'

'कहाँ थीं अब तक?' आदि प्रश्नों का उत्तर देना श्यामली जी के लिए मुश्किल हो गया। घर में लड़ाई का माहौल रहने लगा। घर की रोज़ की झिक-झिक से तंग आकर श्यामली जी ने एक ऐसा निर्णय जो शायद किसी और माँ और पत्नी के लिए मुमकिन न था। पर श्यामली जी अलग थीं, एक नया विश्वास था उनमें, वे कमा रहीं थीं, स्वतंत्र थीं, इतने प्रश्नों में कब तक बंधती। आख़िर घर छोड़ने का निर्णय लिया उन्होंने, एक दिन जब बच्चे स्कूल में थे और पति कहीं गए हुए थे तो अपना सामान बाँध वे निकल गईं।

कुछ दिन अकेली रहीं फिर उनकी परेशानियाँ देख के डॉक्टर अपने घर ले गए। पति से तलाक हो गया, पति ने बच्चों को सँभाला और श्यामली जी अपनी नई दुनिया में व्यस्त हो गईं। छह महीने बाद डॉक्टर ने उनसे शादी कर ली। श्यामली जी देश-विदेश घूमीं, हर ख्वाहिश पूरी की, खूबसूरत कपड़ों और गहनों में लदी अपने नए पति के सोशल सर्किल में व्यस्त हो गईं।

पाँच साल हनीमून के अच्छे गुज़रे, अचानक उन्हें पता लगा कि डॉक्टर पति का अपने क्लीनिक की चाइनीज़ रिसेप्शनिस्ट के साथ रोमांस चल रहा है । उसे मनाने की, समझाने की, रिझाने की बहुत कोशिश की, पर जो होना था वही हुआ। एक दिन बात इतनी बढ़ी कि डॉक्टर ने डिवोर्स की माँग की। सारा रोमांस काफ़ूर हो गया। पैर के नीचे से धरती निकल गई, 'अब क्या करें, कहाँ जाएँ, दुनिया क्या कहेगी' प्रश्नों ने उन्हें झकझोर दिया। रहने को एक घर और पैसे तो मिले, सर पर छत तो थी, पर इस धक्के से उबर न पाती थीं, विश्वास नहीं होता था कि उनके साथ ऐसा हुआ, जिसके लिए घर बार छोड़ा, बच्चे छोड़े, बसी-बसाई दुनिया छोड़ी, उसी ने उन्हें छोड़ दिया? तमाम यतन किये, पंडित से दीक्षा ली, एक बार ज़हर भी खाने की कोशिश की, पर किसी से भी आराम न मिला। खुद को सँभाला, दुबारा घर जमाया, नौकरी ढूँढ़ी और व्यस्त हो गईं। माँ को बुलाकर अपने पास रखा, समाज सेवा की, दो साल रोमांस भी हुआ, पर मन में

शांति न आई। जगह-जगह घूम कर, लोगों का संग-साथ ढूँढ़कर अपने जीवन के पाँच साल बिताए। अतीत बार-बार उनके सामने घूमने लगा। दस साल बाद बच्चों की याद भी आई। पर वे अब आगे निकल चुके थे, माँ को माफ़ कर पाना उनके लिए संभव न था। समाज में बदनामी के जो दंश सहे थे उन्होंने, वे ही जानते थे, 'देखो इनकी माँ किसी और के साथ भाग गई, बच्चों का भी ख्याल नहीं किया।' कैसे इस बात से वे उबर पाते। श्यामली जी का मन कहीं न लगता, काम करतीं जैसे मशीन, संग साथ था दो पल का। रात को बिस्तर पर लेटतीं तो अपराध भाव मन को मथने लगता। कितने पुरुष मित्र भी थे, पर संतोष न था, शांति न थी, भटकन थी, अकेलापन था, और असहायता थी। जी रहीं थीं पर मकसद न था, काम कर रहीं थीं क्योंकि पैसे चाहिए थे, दोस्त सहेली थे क्योंकि वक़्त बिताना था। पर फिर क्या? और क्या?

ठीक ही है कि 'जो-जो जैसे होना है वैसे-वैसे होता है,' अचानक आशा की किरण जगी, जैसे चमत्कार हुआ। उनके कुछ ऑस्ट्रेलियन मित्र मिले, भारत के एक शहर में बने अनाथालय के बारे में उन्हें बताया। अगली बार दिल्ली गईं तो अनाथालय को भी देखने चली गईं। देखने क्या गईं, जैसे वहीं की हो के रह गईं। छोटे- छोटे नाक बहाते बच्चों की शिक्षा-दीक्षा, कपड़े-लत्ते, स्वास्थ्य और सफाई, सबमें उन्हें आनंद आने लगा। श्यामली जी को जैसे जीवन का मकसद मिल गया। सिडनी छोड़ अनाथालय के नाम समर्पित हो गईं। आप सोचेंगे कि वे सन्यासिनी हो गईं, जी नहीं, ऐसा बिलकुल नहीं है, श्यामली जी ऐसी हो ही नहीं सकतीं, वे अभी भी ज़िंदा दिल हैं, रोमांस से भरपूर हैं, शादी के पचड़ों में वे कभी नहीं पड़ेंगी, बस फ़र्क ये है कि वे अपने रोमांस का फायदा कभी-कभी अनाथालय के कमरे बनवाने और सामान खरीदने में कर लेती हैं। ज़िन्दगी से हार न मानना और हमेशा उसे नए अर्थ देना, यही हैं श्यामली जी। कोई कुछ भी कहे, पर उनकी यही खासियत मुझे बेहद पसंद है।

****

लघुकथा

हूटर

डॉ. संध्या तिवारी

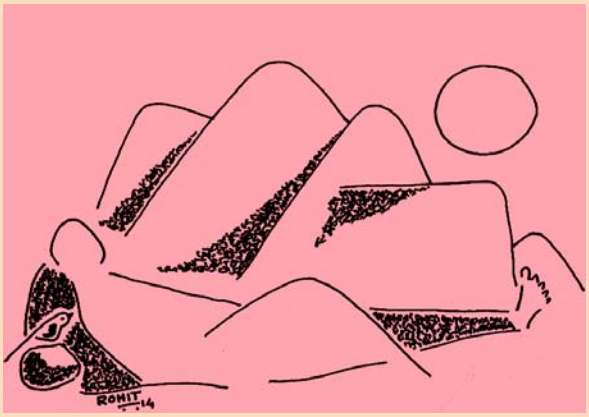

मुझे फैक्ट्री के सारे मुलाज़िम हमेशा ही फैक्ट्री में बजने बाले हूटर के गुलाम सरीखे दिखते थे। हालाँकि ये सब नियम से नहाते-धोते ,खाते-पीते थे , लेकिन इनके जीवन में स्फूर्ति न थी।

एक यंत्रवत् जीवन यापन था। एक अनकही यन्त्रणा थी।

सबेरे पाँच बजे के हूटर पर मन हो या न हो बिस्तर छोड़ देना। सात बजे के हूटर पर टिफिन का झोला साइकिल में लगाए, साढ़े सात के हूटर पर फैक्ट्री गेट के अन्दर आई कार्ड पंच करने से लेकर, इस कैद खाने से छूटने की शाम सात बजे तक के हूटर की थका देने बाली अविराम प्रतीक्षा, फैक्ट्री में काम करने वाले हर कर्मचारी के हिस्से की दिनचर्या थी।

नापसंदगी ही कभी-कभी जीवन का अभिन्न अंग बन जाती है। शादी के बाद मेरा जीवन भी हूटराधीन था।

'हूटर के दास पति की दासी अर्थात् दासनुदासी।'

एक दिन हूटर की आवाज़ पर वह उठा। उस दिन उसका चेहरा जल्दी में नहीं लग रहा था। हाँ कुछ-कुछ चोर निगाहों से मुझे ज़रूर देख रहा था।

मैंने टिफिन दिया। उसने टिफिन लेते हुए अपनी अँगुली मुझसे न छू जाये इसका भरसक प्रयत्न किया।

मैंने नोटिस किया, लेकिन किसी अशुभ विचार से कहीं 'पल्ला न छू जाए, इस डर से पल्ला झाड़ लिया।'

वह किसी स्वामिनी का हाथ पकड़े इस हूटर की परिधि से कहीं बाहर चला गया था। और मैं, दासानुदासी हूटर की गुलामी करती आज भी सुबह के पाँच बजे के हूटर पर बिस्तर छोड़कर शाम के सात बजे के हूटर पर दरवाज़े की कुन्डी खोल हर आहट पर ऐसे कान लगाए रहती हूँ जैसे पूरे शरीर में कान ही कान उग आये हो।

लेकिन सुनाई पड़ती है तो केवल सात, सवा सात, साढ़े सात के हूटर की आवाज़। जो रोज़ मुझे हूट करती है , और मैं इसका कुछ नहीं कर पाती।

****

sandhyat70@gmail.com

व्यंग्य

अथ गांधारी युग कथा

प्रेम जनमेजय

मित्रों कहा जाता है कि महाभारत का मूल रूप उपलब्ध नहीं है। उसके अनेक रूप हैं। जिसके अनेक रूप हों उसे प्रमाणिक सिद्ध करना कठिन हो जाता है। जैसे ईश्वर के अनेक रूप हैं और उन्हें प्रमाणिक सिद्ध करना कठिन तो क्या असंभव ही है। महाभारत का एक ऐसा ही रूप मुझे प्राप्त हुआ है। आप अपनी अज्ञानतावश कह सकते हैं कि यह स्वरूप सत्य नहीं है परंतु मैं अपनी 'ज्ञानतावश' कहूँगा कि यही सही है। आप चाहें तो इस विषय पर संसद में चर्चा करवा लें, काम रोको प्रस्ताव पेश कर दें, ससंद ही भंग करवा दें अथवा अन्ना-आंदोलन करवा दें। जनता पर कोई प्रभाव पड़ने वाला नहीं है। जनता मोमजामा हो गई है। संसद में आपके इन समस्त प्रजातांत्रिक 'अधिकारों' के सुप्रयोग के टी वी पर प्रसारण को देखकर भारतीय जनता निश्चित कर चुकी है कि यह प्रजातांत्रिक नौटंकियाँ टरने वाली नहीं हैं। आप तो जानते ही हैं कि भ्रष्टाचार के संबंध में भी वह निश्चित कर चुकी है कि सूरज टरे चंद्र टरे टरे न भ्रष्टाचंद्र। आप तो प्रसन्न ही होंगे ये सब देखकर। आप तो चाहते ही हैं कि जनता मान ले कि आप और आपके सहोदर भ्रष्टाचार जी लाइलाज कोढ़ की बीमारी हैं, जिससे जनता दूर ही रहे तो अच्छा है। जनता दूर रहे और आप इसके सामीप्य का सुख उठाते रहें। खैर, मुझे महाभारत के एक संस्करण में निम्नलिखित प्रसंग मिला है। यह विषय शोधकर्ताओं के लिए शोध का , टी वी वालों के लिए जुगाली का और स्तंभ लेखकों के लिए स्तंभित लेखन का हो सकता है। आप से अनुरोध है कि जाकि रही भावना जैसी प्रभु मूरति देखी तिन तैसी के अनुसार इसका प्रयोग करें। इस कथा को सुनने से प्रजातंत्र के प्रति अनावश्यक मोह गायब हो जाता है और स्वयं को कठपुतली होने का बोध होता है।

अथ गांधारी युग कथा

धृतराष्ट्र उद्विग्न-से अपने कक्ष में संजय की प्रतीक्षा कर रहे थे। बहुत दिनों से वे देख रहे थे कि संजय उनके पास आने से बच रहे हैं। आ भी जाते है तो आँखों देखा हाल सुनाने से बचते हैं। संजय कभी हाल सुनाते भी हैं तो लगता है जैसे संपादित अंश सुना रहे हों। धृतराष्ट्र ने अनेक बार सोचा कि वे संजय को उसकी हरकतों के लिए सवाल करें, उसे डांटे पर यह सोचकर रुक गए कि यदि संजय ने त्यागपत्र दे दिया तो...। तो, वे तो बिल्कुल अंधे ही हो जाएँगे। आजकल के सेवकों में सहनशीलता रह कहाँ गई है। अच्छे सेवक बड़ी कठिनाई से मिलते हैं। तनिक-सा क्रोध दिखाओं तो आँखें दिखाने लगते हैं और नौकरी छोड़ने की धमकी देते हैं। इनके दिमाग बहुत चढ़ गए हैं।

पर आज धृतराष्ट्र पूरे मूड में हैं कि वे संजय से सवाल अवश्य करेंगें। अगर सवालों से संजय रुष्ट हो गए तो महाराज उसे पुराने संबंधों का वास्ता देकर, उसके गुणों की प्रशंसा कर, कुछ ईनाम -इकराम आदि द्वारा मना लेंगे। संजय में अभी भी पुराने नैतिक मूल्य विद्यमान हैं और धृतराष्ट्र को उनके आधार पर सेवकों का भावनात्मक शोषण करना अच्छी तरह आता है। ऐसे में धृतराष्ट्र बेचारे-से, किसी निरीह प्राणी-से हो जाते हैं जिस पर किसी को भी दया आ जाए। उनका तो चेहरा है ही ऐसा जो दूसरे की दया और करुणा को निरंतर अपनी ओर आकर्षित करता रहता है। और वाणी, वाणी ऐसी मद्धम कि सन्नाटे की आवाज़ को भी सुनने का दावा करने वालों को भी हियरिंग एड लगाकर सुननी पड़े।

ऐसे सर्वगुण संपन्न धृतराष्ट्र आज बेसब्री से संजय की प्रतीक्षा कर रहे हैं। संजय को अनेक बुलावे आ चुके थे इसलिए वे भी आ रहे थे और निरंतर इस बात का ध्यान भी रख रहे थे कि वे उनका हर कदम को सूँघने वाले कुत्तों से सावधान रहें।

संजय की पदचाप को धृतराष्ट्र बखूबी पहचानते थे। धृतराष्ट्र उन पदचापों को भी पहचानते थे; जो लगती तो संजय जैसी थीं पर थीं नहीं और धृतराष्ट्र के कौन कहने पर मौन हो जाया करती थीं। आज भी संजय की असली पदचाप को धृतराष्ट्र ने सुना तो प्रसन्न हो

मुख्य कृतियाँ
व्यंग्य संकलन : राजधानी में गँवार, बेशर्ममेव जयते, पुलिस! पुलिस!, मैं नहिं माखन खायो, आत्मा महाठगिनी, मेरी इक्यावन व्यंग्य रचनाएँ, शर्म मुझको मगर क्यों आती, डूबते सूरज का इश्क, कौन कुटिल खल कामी, ज्यों ज्यों बूड़ें श्याम रंग
आलोचना : प्रसाद के नाटकों में हास्य-व्यंग्य, हिंदी व्यंग्य का समकालीन परिदृश्य, श्रीलाल शुक्ल : विचार, विश्लेषण और जीवन
नाटक : सीता अपहरण केस
बाल साहित्य : शहद की चोरी, अगर ऐसा होता, नल्लुराम
अन्य : हुड़क, मोबाइल देवता
संपादन : व्यंग्य यात्रा (व्यंग्य पत्रिका), बींसवीं शताब्दी उत्कृष्ट साहित्य : व्यंग्य रचनाएँ, हिंदी हास्य-व्यंग्य संकलन (श्रीलाल शुक्ल के साथ सहयोगी संपादक)
सम्मान
व्यंग्यश्री सम्मान, कमला गोयनका व्यंग्यभूषण सम्मान, संपादक रत्न सम्मान, साहित्यकार सम्मान, इंडो-रशियन लिटरेरी क्लब सम्मान, अवंतिका सहस्त्राब्दी सम्मान, हरिशंकर परसाई स्मृति पुरस्कार, प्रकाशवीर शास्त्री सम्मान, अट्टहास सम्मान
संपर्क : 73 साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली - 110063
फोन 011-25264227
ई-मेल premjanmejai@gmail.com

गए। पदचाप के निकट आने पर धृतराष्ट्र ने कहा – आओ संजय, मेरे पास बैठो। आज मेरा मन बहुत उद्विग्न है, तुम तो मेरे बहुत ही पुराने और विश्वसनीय मित्र जैसे हो, मेरे पास बैठो।'

– नहीं महाराज , मैं अपने स्थान पर ही उचित हूँ।'

– संजय, मुझे तुमसे कुछ गुप्त बात करनी है, प्रहरी से कहो की द्वार बंद कर दे और साँकल लगा दे।

– महाराज, मैंने आपको बताया ही था कि साँकलें तोड़ दी गई हैं और द्वार बंद नहीं होते हैं।

– अभी तक ठीक नहीं हुईं तुमने किसी से कहा नहीं कि इस द्वार को ठीक...

– महाराज, ठीक तो वह होता है जो स्वयं बिगड़े पर जिसे दूसरे ने बिगाड़ा हो उसे... महाराज, मैंने रानी गांधारी के कार्यालय में प्रार्थना पत्र भिजवा दिया था।

– गांधारी के कार्यालय में क्यों ?

– आजकल समस्त आदेश वहीं से आते हैं। आप भी जिन आदेशों पर हस्ताक्षर करते हैं, वे भी वहीं से आते हैं। आपको संभवत: ज्ञात ही होगा महाराज।

–धृतराष्ट्र के पास हूँ के अतिरिक्त कुछ कहने और विवशता में हाथ मलने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था। कुछ क्षण सहज होकर धृतराष्ट्र ने कहा– संजय यह तो कह कि इस समय मेरे प्रिय साले, शकुनि जी क्या कर रहे हैं?

संजय– क्षमा करें महाराज, उसका वर्णन मैं नहीं कर पाऊँगा ।

धृतराष्ट्र– क्यों संजय, क्या तुम्हारी दिव्य दृष्टि में दोष आ गया है?

संजय– प्रभु मेरी दृष्टि तो वही है पर कुछ क्षेत्रों का वर्णन मेरे अधिकार क्षेत्र में नहीं रहा है।

धृतराष्ट्र– यानि कि कुछ क्षेत्रों की जानकारी मेरे अधिकार क्षेत्र में नहीं रही है।' धृतराष्ट्र उद्विग्न हो गए।

धृतराष्ट्र बहुत दिनों से उद्विग्न ही हैं और आगे आने वाले दिनों में भी उनके उद्विग्न रहने की प्रबल संभावनाएँ हैं। मौसम की यही भविष्यवाणी है।

जब से युवराज दुर्योधन एंड पार्टी अत्यधिक सक्रिय हुई है एवं युद्ध अवश्यंभावी हुआ है और महाराज के रूप में धृतराष्ट्र के दायित्व बढ़े हैं, या कहें कि सही मायने में वे 'महाराज' हुए है तब से उन्हें लगता है कि जैसे वे रसोई घर के महाराज होकर रह गए हैं। क्या पकना है, कैसे पकना है, कहाँ पकना है, क्यों नहीं पकना है आदि निर्णयों के वे मात्र पालनकर्ता हैं। उन्हें लगता है कि उनकी स्थिति त्रेता के पादुका– शासक भरत से भी बदतर हो गई है। भरत चाहे पादुका शासक थे पर उनके पादुकादाता तो उनसे कोसों दूर अपनी ही परेशानियों में इतने घिरे थे कि उन्हें अयोध्या की ओर सर उठाकर देखने के भी फुरसत नहीं थी, पर यहाँ तो अब यह लगने लगा है कि हर क्षण न केवल उनके हर कार्य का निरीक्षण परीक्षण किया जा रहा है अपितु उनकी असहायता की खिल्ली भी उड़ाई जा रही हैं। धृतराष्ट्र अपने अंधत्व से उतने पीड़ित नहीं हैं, जितना अपनी खिल्ली उड़ाते बाणों से आहत होते हैं। उनकी विवशता ये है कि खिल्ली उड़ाने वालों को उत्तर देने के लिए वे 'महाराज' का पद भी नहीं छोड़ सकते हैं। पद तो तभी छोड़ पाएँगे, जब सही समय आएगा। धृतराष्ट्र सही समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे ये भी जानते हैं कि गांधारी, शकुनि समेत सभी उनके 'प्रिय' सही समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सही समय तब आएगा जब युवराज दुर्योधन शासन सँभालेंगे।

धृतराष्ट्र इतने भी अंधे नहीं हैं कि यह न जाने कि ये सब उनको ढाल बनाकर महाभारत का युद्ध लड़ना चाहते हैं; जिससे जीतने पर दुर्योधन की जयकार कर सकें और पराजित होने पर धृतराष्ट्र की निंदा कर सकें।

संजय ने कहा – महाराज दुर्योधन और शकुनि की व्यवस्था में मैं अशक्त हो गया हूँ। मैं जहाँ भी अपनी दिव्य दृष्टि को प्रेषित करता हूँ, उसका मार्ग दृष्टि बाधक यंत्र रोक लेते हैं। अनेक बार मुझे लगता है कि मेरी जैसी अनेक छायाएं मेरे चारों ओर विचरण कर रही हैं। महाराज मैंने आपका और हस्तिनापुर का नमक खाया है और आपके प्रति प्रतिबद्ध हूँ परंतु जैसे सशक्त पुत्र के समक्ष अशक्त पिता विवश होता है, नंगे के सामने ईश्वर भी विवश होता है, अनैतिकता के समक्ष नैतिकता विवश होती है, द्रौपदी चीर–हरण पर बुज़ुर्ग पीढ़ी विवश थी तथा धनवान के समक्ष न्याय विवश होता है वैसे ही मैं भी विवश हूँ।

गांधारी के पास अनेक संजय थे जो विभिन्न क्षेत्रों के प्रभारी थे। संजय एक रनिवास का प्रभारी था जहाँ कुंति समेत अनेक 'माताएँ' रहती थीं। संजय दो भीष्म के महल का प्रभारी था। संजय तीन 'महाराज' धृतराष्ट्र के मुख्य कक्ष का प्रभारी था। इसी प्रकार द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, आदि महारथियों के विभिन्न क्रमांक के संजय प्रभारी तो थे ही अनेक कौरवों के भी प्रभारी भी थे। कहा जा सकता है कि जैसे एक प्रभु अनेक रूपों में अनेक स्थानों पर पाए जाते हैं वैसे ही संजय नामक ये जीव भी अनेक रूपों में पाया जाता था। जैसे प्रभु का चाहे अनेक रूप में अनेक होने के बावजूद कर्म एक ही होता है–दिव्य दृष्टि से धर्म की हानि को देखना और उसे रोकना, वैसा ही कुछ अनेक रूपी संजय का भी कर्म और धर्म होता है।

धृतराष्ट्र जन्मांध थे, उन्होंने सृष्टि का एक ही रूप अपने अनुभव से जाना था– अंधकारी रूप। शेष तो उन्होंने वही जाना था जो उन्हें जताया गया था। परंतु गंधारी ने तो जन्म से लेकर युवावस्था तक सृष्टि के हर रूप और रंग को देखा था। गांधारी ने तो युवावस्था में बलात् अपनी आँखों में पट्टी बाँधकर स्वयं को दृष्टिबाधित किया था। युवावस्था में भविष्य के लिए बाधित दृष्टि बहुत ही खतरनाक होती है। पट्टी के अंदर अनेक स्वप्न होते हैं, जिसे वे बाहर के विश्व में साकार करना चाहती है। गांधारी को तो व्यवस्था ने विवश किया था पट्टी बाँधने को। पट्टी बंधी थी परंतु वह दृष्टि को बाधा पहुँचाने में सक्षम नहीं थी। सामान्य मनुष्य की तो दो आँखें होती हैं परंतु गांधारी की अनेक संजयों के रूप में इंद्र से भी अधिक आँखें थीं।

गांधारी – युग तिहूं लोक बखाना
गांधारी का पर मर्म न जाना ।

****

ग़ज़ल का अदम-लिबास

गौतम राजरिशी

अदम गोंडवी
22 अक्तूबर 1941 - 18 दिसंबर 2011

टाइम-मशीन जैसा कोई जो यंत्र होता सचमुच का, तो सन् 1978 के मई की एक तपती संध्या को भोपाल के उस कवि-सम्मेलन में श्रोताओं के मध्य जा बैठता अभी...किसी बीच वाली कतार में (पहली कतार में तो शर्तिया नहीं), जब पहली बार अपने मैले-कुचेले धोती-कुर्ता-गमछा में लिपटे कवि श्री रामनाथ सिंह को अपना एक मतला (ग़ज़ल का पहला शेर) पढ़कर जाने कितने क्षणों के लिए श्रोताओं की गड़गड़ाती तालियों और आगे बैठे महानुभावों के बेचैन बदलते पहलूओं के सामने माइक थामे चुपचाप खड़ा रहना पड़ा था। वो उनका शेर जो किसी नारे से भी ज़्यादा मशहूर हुआ बाद में...

जितने हरामखोर थे कुरबो-जवार में
परधान बन के आ गए अगली कतार में

...इस शेर ने जहाँ ग़ज़ल को एक अलग ही तेवर दिया उस रोज़, वहीं ग़ज़ल की नाज़ुक कहलाने वाली ज़मीन तनिक सिहर-सी उठी थी। ग़ज़ल जो अब तक इठलाती थी अपनी नज़ाकत पे, जिसे दुष्यंत ने छेड़ा था ज़रूर अपने ही अंदाज़ में; लेकिन उस छेड़ में भी एक कोमलता थी, बिंबों का लिबास था, एक छुपाव था...उसे एकदम से उघाड़ कर इस मैले धोती-कुर्ते और गमछे वाले अलमस्त शायर ने एक नया ठेठपन दे दिया, एक बेखौफ ढिठाई दे दी।

हिन्दी-साहित्य में जब-जब ग़ज़ल की बात उठेगी, दुष्यंत का ज़िक्र आना लाज़िमी है। अपनी ग़ज़लों से एक तरह का ट्रेड-मार्क बन गए दुष्यंत कुछ ऐसी लेगेसी छोड़ गए अपने पीछे कि हिन्दी-साहित्य में ग़ज़ल-विधा को अपना हस्ताक्षर बनाने की सोच रखने वाली शायरों की तमाम नस्ल बाद-वक़्त बस कुढ़ती ही रह गई। एक पूरी पीढ़ी ने सोचा कि महज सियासत और सत्ता का अपने शेरों में ज़िक्र उठा कर वो भी दुष्यंत बन जाएगी। इसका खामियाज़ा जहाँ शायरों की इस पूरी नस्ल ने झेला ही, वहीं दूसरी ओर ग़ज़ल खुद भी बदनाम हुई। फिर आये अपने अलमस्त शायर अदम गोंडवी, जिन्होने ''धरती की सतह'' पर ''समय से मुठभेड़'' करते हुये ग़ज़ल को नया तेवर दिया और ग़ज़ल को मिली उसकी

कर्नल गौतम राजरिशी का जन्म 10 मार्च, 1976 को सहरसा (बिहार) में हुआ। राष्ट्रीय रक्षा अकादमी व भारतीय सैन्य अकादमी में प्रशिक्षण प्राप्त करने के उपरांत वर्तमान में आप भारतीय सेना में कर्नल के पद पर हैं। गौतम राजरिशी हिन्दी के लोकप्रिय शायरों में से हैं। आपका ग़ज़ल संग्रह "पाल ले इक रोग नादाँ" काफी चर्चित तथा लोकप्रिय रहा है। ग़ज़ल व हिन्दी-साहित्य के शौकीन गौतम राजरिशी की कई रचनाएँ कादम्बिनी, हंस, परिकथा, कथादेश सहित कई साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं।
अपने ब्लाग "पाल ले एक रोग नादाँ" के माध्यम से आप अंतर्जाल पर भी सक्रिय हैं।
द्वारा- डॉ. रामेश्वर झा
वी. आई. पी. रोड
पूरब बाज़ार
सहरसा-852201(बिहार)
मोबाइल-09759479500
ई मेल gautam_rajrishi@yahoo.co.in

खोई हुई थोड़ी सी पहचान। सुना है कि अदम साब को उर्दू का किंचित सा ज्ञान था। ग़ज़ल के बहरों की सीमित जानकारी थी उन्हें बस। शायद इसलिए, उनकी लगभग सत्तर के करीब ग़ज़लें जो सामने आईं पाठकों तक दो किताबों की शक्ल में, वो सब की सब फारसी की गिनी-चुनी तीन से चार लोकप्रिय बहरों पर ही कही गई हैं बस। ज़ाहिर है, उन्हें ग़ज़ल का पुरोधा बनने का शौक नहीं था और ना ही अपनी रचनाओं को टेक्स्ट-बुक आदि में शामिल करवाने की ख़्वाहिश। उनकी ग़ज़ल एक संवेदनशील शायर के अंदर के आक्रोश और छटपटाहट की अभिव्यक्ति मात्र है, जिसने इन तीन-चार लोकप्रिय बहरों का प्लेटफार्म चुना खुद को आवाम तक पहुँचने के लिए। अपनी इस अभिव्यक्ति की छटपटाहट को व्यक्त करने के लिए अदम साब ने ग़ज़ल की कठिन विधा को ही क्यों अपनाया, ये जानना सचमुच रोचक होगा। अपनी लगभग सारी ग़ज़लों में जहाँ वो एक हद तक क्रूर हैं, कठोर हैं, बेखौफ़ हैं, वहीं अपनी एक ग़ज़ल में ग़ज़ल का ही बयान करते हुये कहते हैं कि "बेल-सी लिपटी हुई है फलसफे की शाख पर / भीगी रातों में महकती रातरानी है ग़ज़ल" ... और तब शायद थोड़ा-सा पता चलता है कि क्यों अदम साब ने ग़ज़ल को ही अपना प्लेटफार्म बनाया अपनी अभिव्यक्ति के लिए। उनकी तमाम ग़ज़लों में शायद ये इक इकलौता शेर है, जहाँ ये गुस्साया हुआ साथ ही व्यथित शायर तनिक कोमल हुआ है, तनिक रूमानी हुआ है। वरना तो अपनी तमाम ग़ज़लों में वो ग़ज़ल-शास्त्रियों द्वारा डिक्टेट की हुई ग़ज़ल के हर हाल में नाजुक-कोमल होने और इशारों-इशारों में बात कहने वाली बुनियादी उसूलों के परखच्चे ही उड़ाते दिखते हैं। दुष्यंत सीधे-सीधे जेपी आंदोलन से जुड़े होकर भी इशारे में ही कहते थे कि "यहाँ तक आते आते सूख जाती है कई नदियाँ, हमको मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा" या फिर "एक गुड़िया की कई कठपुतलियों में जान है...." लेकिन अदम ने "कमीशन दो तो हिन्दुस्तान को नीलाम कर देंगे" या फिर "काजू भुनी प्लेट में..." जैसे शेरों के जरिये

बिंबों और इशारों को ठेंगा दिखाते हुए सीधी बात कहने की ठानी। ग़ज़ल की अदबी ज़मीन एक बार को सिहरी ज़रूर, लेकिन शायर को आवाम ने दिल में बसा लिया।

अपनी अभिव्यक्ति के लिए चाहे जिस किसी भी वजह से अदम साब ने ग़ज़ल की विधा को अपनाया हो, हिन्दी के मगरूर साहित्य-विशारद बस इसी वजह से उनको वो जगह नहीं देंगे जिसके वो हकदार हैं। अपना यही तेवर यदि वो आज की प्रचलित नई कविता के जरिये दिखाते तो शायद अदम साब का आकलन भी नागार्जुन या धूमिल के समकक्ष होता। बेशक उनके देहांत के तुरंत बाद उन्हें इस कदर याद किया जा रहा हो, लेकिन ग़ज़ल हमेशा से हिन्दी-साहित्य के लिए कुछ एलियेन जैसी विधा ही रही है और अदम साब की शायरी उसी एलियेन विधा के फेर में भुला दी जाएगी हिन्दी-साहित्य द्वारा। हिन्दी-साहित्य की समस्त विधाओं में चाहे वो कहानी हो, कविता हो, उपन्यास हो, लेख, यात्रा-संस्मरण या आलोचना आदि हो...इन समस्त विधाओं में ग़ज़ल हमेशा से हाशिये पर ही खड़ी नज़र आती है। आप कोई भी साहित्यिक पत्रिका उठा कर देख लीजिये...हफ़्ते, पखवारे, महीने या वर्ष के अंत में होने वाले किसी भी साहित्यिक लेखे-जोखे में आप कभी भी किसी ग़ज़लकार, शायर या ग़ज़ल-संग्रह का ज़िक्र नहीं पाएँगे। कभी भी नहीं। हर पत्रिका में जब भी उसके अगले महीने निकलने वाले अंक का जिक्र होता है, आप हमेशा पाएँगे "फलाँ-फलाँ की कहानियाँ और अमुक-अमुक की कविताएँ अगले अंक का विशेष आकर्षण" किंतु आप कभी नहीं लिखा पाएँगे फलाँ-फलाँ या अमुक-अमुक की ग़ज़लें, चाहे दो से चार ग़ज़लें नियमित रूप से छपती हों उस पत्रिका में हर महीने। ज़्यादा दूर क्यों जाना...प्रसिद्ध मासिक-पत्रिका 'हंस' ने अभी-अभी पिछले साल अपने फरवरी अंक में एक पन्ना अदम गोंडवी साब की ग़ज़लों को दिया है। इसी अंक में एक पन्ना मदन कश्यप की कविताओं का भी है। अब आप 'हंस' का जनवरी अंक उठा कर पलट लें और उसमें आने वाले अगले अंक के आकर्षण में जहाँ मोटे-मोटे अक्षरों में मदन कश्यप का ज़िक्र मिल जाएगा अगले अंक के आकर्षण में, अदम गोंडवी साब का नाम कहीं नहीं पाएँगे आप। इस सौतेले व्यवहार के लिये जितना दोष इन कथित साहित्य-प्लेटफार्मों (?) का बनता है, उतना ही या उससे कहीं अधिक दोष एकदम से उमड़ आई शायरों की उस पूरी फौज का भी बनता है; जो ग़ज़ल के नाम पर बगैर उसका व्याकरण जाने शेर पे शेर जोड़े जाते हैं। किंतु उसी हाशिये पर- ग़ज़लकारों की इन तमाम अधकचरी जमात से परे- कोई दुष्यंत और कोई अदम अपनी मौत के बाद ही सही ग़ज़लों का ऐसा तेवर छोड़ जाते हैं कि हाशिये को धता बताते हुये ग़ज़ल के लिये पूरे पन्ने को भी कम पड़ने का अहसास हो आता है। इसी अहसास की बदौलत ग़ज़ल अब तलक कविता की भाँति "अ-ग़ज़ल" या "बहर-मुक्त (छंदमुक्त की तर्ज़ पर) ग़ज़ल" या "नई ग़ज़ल" नहीं हुई है..... वो सिर्फ और सिर्फ ग़ज़ल ही है।

ग़ज़ल के अदबी हयात ने वैसे तो दुष्यंत को भी नहीं स्वीकारा था और न ही ये अदम को ही स्वीकारेगी। बहरो-वज़न, रदीफ़ो-काफ़िया पे तमाम नुक्ता-चीं करते हुये अरूजियों की पूरी फौज बेशक कितना ही नाक-भौं सिकोड़ती रहे, ग़ज़ल का ये नया अदम-लिबास सदियों-सदियों तक पहना जाता रहेगा।

****

ज़ुल्फ़-अंगडाई-तबस्सुम-चाँद-आईना-गुलाब
भुखमरी के मोर्चे पर ढल गया इनका शबाब

पेट के भूगोल में उलझा हुआ है आदमी
इस अहद में किसको फुर्सत है पढ़े दिल की क़िताब

इस सदी की तिश्नगी का ज़ख़्म होंठों पर लिए
बेयक़ीनी के सफ़र में ज़िंदगी है इक अजाब

डाल पर मज़हब की पैहम खिल रहे दंगों के फूल
सभ्यता रजनीश के हम्माम में है बेनक़ाब

चार दिन फुटपाथ के साये में रहकर देखिए
डूबना आसान है आँखों के सागर में जनाब

●

जिसके सम्मोहन में पागल धरती है आकाश भी है
एक पहेली-सी दुनिया ये गल्प भी है इतिहास भी है

चिंतन के सोपान पे चढ़ कर चाँद-सितारे छू आये
लेकिन मन की गहराई में माटी की बू-बास भी है

मानवमन के द्वन्द्व को आख़िर किस साँचे में ढालोगे
'महारास' की पृष्ट-भूमि में ओशो का सन्यास भी है

इन्द्र-धनुष के पुल से गुज़र कर इस बस्ती तक आए हैं
जहाँ भूख की धूप सलोनी चंचल है बिन्दास भी है

कंकरीट के इस जंगल में फूल खिले पर गंध नहीं
स्मृतियों की घाटी में यूँ कहने को मधुमास भी है.

●

चाँद है ज़ेरे क़दम सूरज खिलौना हो गया
हाँ, मगर इस दौर में क़िरदार बौना हो गया

शहर के दंगों में जब भी मुफ़लिसों के घर जले
कोठियों की लॉन का मंज़र सलौना हो गया

ढो रहा है आदमी काँधे पे ख़ुद अपनी सलीब
ज़िन्दगी का फ़लसफ़ा जब बोझ ढोना हो गया

यूँ तो आदम के बदन पर भी था पत्तों का लिबास
रूह उरियाँ क्या हुई मौसम घिनौना हो गया

अब किसी लैला को भी इक़रारे-महबूबी नहीं
इस अहद में प्यार का सिम्बल तिकोना हो गया

स्मरण

अदम गोंडवी

अदम गोंडवी का जन्म आजाद भारत में 22 अक्तूबर 1941 को परसपुर जनपद गोंडा के गाँव आटा में हुआ था। अदम गोंडवी का असली नाम रामनाथ सिंह था। इनका जन्म स्व0 मांडवी सिंह और देवकली सिंह के पुत्र के रूप में हुआ था। अदम गोंडवी का निधन 18-12 -2011 को लखनऊ में लीवर सिरोसिस की बीमारी से जूझते हुए हो गया था। अदम गोंडवी हिंदी ग़ज़ल में दुष्यन्त कुमार के बाद सबसे अधिक लोकप्रिय कवि / शायर हैं। अदम गोंडवी की वर्ग चेतना जनकवि नागार्जुन के करीब है और उनकी परम्परा कबीर की है।

आप कहते हैं सरापा गुलमुहर है ज़िंदगी
हम ग़रीबों की नज़र में इक क़हर है ज़िंदगी

भुखमरी की धूप में कुम्हला गई अस्मत की बेल
मौत के लमहात से भी तल्ख़तर है ज़िंदगी

डाल पर मज़हब की पैहम खिल रहे दंगों के फूल
ख़्वाब के साए में फिर भी बेख़बर है ज़िंदगी

रोशनी की लाश से अब तक जिना करते रहे
ये वहम पाले हुए शम्सो-क़मर है ज़िंदगी

दफ़्न होता है जहाँ आ कर नई पीढ़ी का प्यार
शहर की गलियों का वो गंदा असर है ज़िंदगी

●

मुक्तिकामी चेतना अभ्यर्थना इतिहास की
यह समझदारों की दुनिया है विरोधाभास की

आप कहते हैं इसे जिस देश का स्वर्णिम अतीत
वो कहानी है महज़ प्रतिरोध की, संत्रास की

यक्ष प्रश्नों में उलझ कर रह गई बूढ़ी सदी
ये परीक्षा की घड़ी है क्या हमारे व्यास की?

इस व्यवस्था ने नई पीढ़ी को आख़िर क्या दिया
सेक्स की रंगीनियाँ या गोलियाँ सल्फ़ास की

याद रखिये यूँ नहीं ढलते हैं कविता में विचार
होता है परिपाक धीमी आँच पर एहसास की

●

भूख के एहसास को शेरो-सुख़न तक ले चलो
या अदब को मुफ़लिसों की अंजुमन तक ले चलो

जो ग़ज़ल माशूक के जल्वों से वाक़िफ़ हो गई
उसको अब बेवा के माथे की शिकन तक ले चलो

मुझको नज़्मो-ज़ब्त की तालीम देना बाद में
पहले अपनी रहबरी को आचरन तक ले चलो

गंगाजल अब बूर्जुआ तहज़ीब की पहचान है
तिशनगी को वोदका के आचमन तक ले चलो

ख़ुद को ज़ख्मी कर रहे हैं ग़ैर के धिखे में लोग
इस शहर को रोशनी के बाँकपन तक ले चलो

स्मृति-चिह्न मूर्तिकार वेर्नर

शकुन्तला बहादुर

भारत में उत्तरप्रदेश की राजधानी लखनऊ में जन्मी शकुन्तला बहादुर लखनऊ विश्वविद्यालय तथा उसके महिला परास्नातक महाविद्यालय में 37वर्षों तक संस्कृतप्रवक्ता, विभागाध्यक्षा रहकर प्राचार्या पद से अवकाशप्राप्त । इसी बीच जर्मनी के ट्यूबिंगेन विश्वविद्यालय में जर्मन एकेडेमिक एक्सचेंज सर्विस की फ़ेलोशिप पर जर्मनी में दो वर्षों तक शोधकार्य एवं वहीं हिन्दी, संस्कृत का शिक्षण भी। यूरोप एवं अमेरिका की साहित्यिक गोष्ठियों में प्रतिभागिता । अभी तक दो काव्य कृतियाँ, तीन गद्य की (ललित निबन्ध, संस्मरण)पुस्तकें प्रकाशित। भारत एवं अमेरिका की विभिन्न पत्रिकाओं में कविताएँ एवं लेख प्रकाशित। दोनों देशों की प्रमुख हिन्दी एवं संस्कृत की संस्थाओं से सम्बद्ध। सम्प्रति विगत 18 वर्षों से कैलिफ़ोर्निया में निवास ।
ईमेल: shakunbahadur@yahoo.com

जब भी मैं अपने चेहरे को मूर्तिरूप में देखती हूँ, देर तक देखती ही रह जाती हूँ। उससे जुड़ी हुई अनेकों स्मृतियाँ बिजली की तरह मन में कौंध जाती हैं। वर्ष 1963 की बात है, जब मुझे भाग्यवश "जर्मन एकेडेमिक एक्सचेंज सर्विस" की ओर से इंडोलोजी में शोधकार्य हेतु फ़ेलोशिप मिलने पर, मैं दो वर्ष तक पश्चिमी जर्मनी में रही थी। ये भी एक संयोग ही था कि मैं पश्चिमी जर्मनी के शहर ट्यूबिंगेन नगर में आकर गार्टेन श्ट्रासे (गार्डेन स्ट्रीट) पर ही रहने लगी थी। विश्वविद्यालय जाते-आते समय नेकर नदी के किनारे पैदल जाते हुए, चारों ओर प्राकृतिक सुषमा निरखते हुए मार्ग कब समाप्त हो जाता था ? पता ही नहीं चलता था। सड़क पर जाते हुए कई बच्चे या महिलाएँ प्राय: रुक कर मेरी भारतीय वेशभूषा को बड़े ध्यान से देखती थीं। साड़ी के संबंध में जिज्ञासा प्रगट करती थीं और कभी-कभी अपने घर का पता बता कर, चाय अथवा खाने पर भी निमन्त्रित कर देती थीं।

उस दिन मैं सेमीनार से काफ़ी देर से आई थी, थकी भी थी। शनिवार होने से रोज़मेरी शालर, मेरी जर्मन सखी (जिसके साथ मैं रहती थी) घर की सफ़ाई में लगी थी। सप्ताह में पाँच दिन का कार्यकाल होने से उस दिन शालर की छुट्टी थी। फ्रायलाइन शालर (मिस शालर) मुझसे आयु में बड़ी थी और एक स्कूल में शिक्षिका थी। वह मेरा छोटी बहिन की तरह ध्यान रखती थी। मेरे ही आग्रह से वह मुझे मेरे नाम से "शकुन" बुलाने लगी थी। शालर ने मुझे आते ही बताया कि एक महिला मुझसे मिलने के लिये आई है और कुछ देर से कमरे में प्रतीक्षा कर रही है।

मैंने जाकर उसका अभिवादन किया और परिचय प्राप्त करना चाहा था। वह सौम्य मुखाकृति वाली महिला बोलीं कि उनका घर उसी सड़क पर है , जहाँ से मैं रोज़ आती जाती हूँ। वह और उनके पति बहुत दिनों से मुझे देख रहे हैं। अपने पति की प्रार्थना लेकर ही, मेरा घर खोजती हुई, उस दिन मिसेज़ वेर्नर (फ्राउ वेर्नर) मेरे पास आई थीं। उन्होंने आग्रहपूर्वक कहा – "आप मेरे पति की प्रार्थना ठुकराएँ नहीं, अन्यथा उन्हें बहुत दु:ख होगा।" मैं अजीब असमंजस की स्थिति में उनको देखती ही रह गई। समझ नहीं सकी कि उनके पति की ऐसी क्या प्रार्थना हो सकती है, जिसकी स्वीकृति के लिये वे आज मुझ अपरिचिता के पास आई हैं? मेरे पूछने पर वे बोलीं –"मेरे पति एक मूर्तिकार हैं। कितने ही बड़े-बड़े जर्मन नेताओं की मूर्तियाँ उन्होंने बनाई हैं, किन्तु किसी भारतीय नारी का चेहरा उन्होंने आज तक नहीं बनाया है । वो बिना किसी प्रतिदान के आपकी प्रतिमा बनाने के लिये इच्छुक तथा उत्सुक हैं । कृपया उनका आग्रह मान लें।"

उनकी बात सुन कर भी कानों को विश्वास नहीं हुआ। क्या यह सच है? समझ नहीं आया कि क्या कहूँ ?

तभी मैंने पूछा कि "मुझे क्या करना होगा ?" बातों में ही पता चला कि मुझे एक सप्ताह तक, नित्य एक घंटे के लिये उनके घर जाना होगा । विश्वविद्यालय से लौटते समय मैं उनके घर रुकती हुई आऊँ । उनके घर चाय/ कॉफ़ी या फ्रूटजूस लेकर थकान मिटा सकती हूँ। उसी समय में उनके पति हेअर वेर्नर (मिस्टर वेर्नर) मुझे देखकर चेहरा बनाते रहेंगे । मैंने शालर से पूछा तो उसने कहा कि "तुम्हें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये । लोग तो इस काम के लिये बहुत पैसा व्यय करते हैं । तुम्हें इस अवसर से लाभ उठाना चाहिए।"

अन्तत: मैंने उनके घर का पता पूछ कर, आगामी सोमवार की शाम को उनके घर जाना स्वीकार कर लिया था। सोमवार को सेमीनार जाते समय प्रात: मैं उनका घर देखती हुई गई, और लौटते समय शाम को वहाँ पहुँच गई। वेर्नर-दम्पति का घर कुछ

ऊँचाई पर था। मैं घंटी बजाने ही वाली थी, तभी दरवाज़ा खुल गया। पति-पत्नी खड़े मुस्कुरा रहे थे। जर्मन में मेरा स्वागत करते हुए 'शेक हैंड' हेतु अपना हाथ भी बढ़ाया था। तब तक मैं अपने दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते करने को प्रस्तुत हो गई थी। मैंने उनको बताया कि भारत में हम इसी तरह अभिवादन करते हैं। उन्होंने मुझसे "नमस्ते" शब्द पूछकर हाथ जोड़ लिये और बोले " न म स टे" । उन्होंने बताया कि वे लोग खिड़की से झाँकते हुए मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे थे । मैं " डंके श्योन" (धन्यवाद) कह कर उनके साथ अंदर चली गई थी ।

वेर्नर कुछ भारी शरीर के थे। सिर पर टोपी लगाए मुस्कुराते रहे थे। उनकी आयु 75 वर्ष से कम नहीं रही होगी। तभी मिसेज़ वेर्नर ने मुझे कॉफ़ी दी थी और मेज़ पर रक्खे बिस्कुट, केक और फल आदि खाने का आग्रह किया था। उसी बीच मुझसे मेरे जर्मनी-निवास, भारतीय वेष-भूषा, संस्कृति एवं खान-पान के संबंध में बातें करने लगीं थीं। वेर्नर ने अपना कार्य प्रारंभ कर दिया था। कहने लगे कि मूर्ति बनाते हुए उन्हें मेरा चेहरा बार-बार ध्यान से देखना पड़ेगा,इसके लिये मुझे बुरा नहीं मानना चाहिये, अन्यथा मूर्ति (bust) पूरी तरह से मुझ जैसी नहीं बन पाएगी। मैं आराम से बैठकर खाती तथा बातें करती रहूँ। वे रोज़ थोड़ी-थोड़ी करके पूरी मूर्ति बना लेंगे।

इसी बीच इस परिवार से मेरी काफ़ी आत्मीयता हो गई थी। एक दिन उन्होंने पूछा कि क्या भारतीय हाथ नहीं मिलाते ? यानी कि कभी 'शेकहैंड' नहीं करते ? मैंने कहा "भारतीय-नारी अपने जीवन में एक ही पुरुष का हाथ पकड़ती है , जिससे विवाह करती है। इसीलिये शादी को "पाणिग्रहण"(हाथ पकड़ना) नाम से भी जाना जाता है । पति-पत्नी इस प्रतीकात्मक हाथ पकड़ने के विधि-विधान के निर्वाह हेतु जीवन जीते हुए, परस्पर पूरा-पूरा सहयोग देते हैं, मिलकर रहते हैं।" इस पर वेर्नर ने कहा था – "मैंने बहुत से भारतीयों को 'शेकहैंड' करते देखा है , कई महिलाओं को भी। जैसे इन्दिरा गाँधी सबसे हाथ मिलाती हैं।" इस पर मुझे कहना पड़ा था कि अंग्रेज़ों के प्रभाव से तथा विदेशों में रहने के कारण कुछ भारतीयों ने उनके सम्पर्क से पाश्चात्य रीति रिवाज़ अपना लिये हैं। श्रीमती इन्दिरा गाँधी की शिक्षा भी विदेश में होने के कारण उन्हें 'शेकहैंड' का अभ्यास है। कुछ नए विचारों की महिलाएँ भी ऐसा करने में संकोच नहीं करती हैं। इस पर वे चुप रह गए थे।

इसी तरह मूर्ति बनती जा रही थी। इस प्रोग्राम में मुझे कोई विशेष परेशानी भी नहीं होती थी। शाम को वापसी में ही रुक कर, चाय नाश्ता उनके साथ करके अपने घर लौट आती थी। अलग से आना-जाना नहीं पड़ता था। मेरे घर जाते समय दोनों सीढ़ियों पर एक साथ खड़े होकर "डंके श्योन" कह कर धन्यवाद देते । दोनों हाथ जोड़ कर 'नमसटे'। कहते फिर हाथ हिलाकर विदा देते हुए "आउफ़ वीडर ज़ेहेन" (फिर मिलेंगे / पुन: मिलने तक) कहते थे। मैं भी जाते हुए कई बार पीछे मुड़कर देखती और हाथ हिला देती थी। वे गद् गद् हो जाते थे। प्राय: वे मेरे परिवार के विषय में पूछते थे। " माता-पिता, भाई-बहन कहाँ हैं ? पति ने विवाह के इतने कम दिनों (डेढ़ साल)बाद तुम्हें इतनी दूर अकेले आने दिया ? लगता है कि वे भी अमेरिकन पतियों के समान उदार विचारों के होंगे। उन्हें तुम पर इतना विश्वास है ? क्या तुम भी उन पर इतना भरोसा करती हो?"

तब मेरा उत्तर " हाँ " में पाकर दोनों जैसे चकित किन्तु आश्वस्त से हो गए थे।

वेर्नर ने अपनी जीवन-गाथा भी मुझे बताई थी। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के समय ये परिवार ड्रेसडेन नगर यानी जर्मनी के पूर्व भाग में था, जिस भूभाग पर बँटवारे के बाद कम्युनिस्ट यानी (रशियन) शासनतंत्र

हो गया था । प्रारंभ में लोग वहाँ के नियंत्रणों से घबराकर पूर्वी जर्मनी से पश्चिमी जर्मनी भाग आते थे। बाद में आना मना हो गया था। पश्चिमी जर्मनी में वातावरण स्वतन्त्र था, समृद्धि और सुख-सुविधाएँ थीं। ये परिवार भी वहाँ आने के लिये प्रयत्नशील था। शासन द्वारा उन्हें ज़बरदस्ती रोक कर , जगह-जगह बहुत सी प्रतिमाएँ (कम्युनिस्ट नेताओं के bust) बनाने के लिये विवश किया गया था। बड़ी कठिनाई से रात में किसी तरह छिपते-छिपाते ये लोग इस ओर आ सके थे। फिर से किसी तरह गृहस्थी जमाई थी। अब सम्पन्न और संतुष्ट थे। कहते थे कि पूर्वी बर्लिन जाने पर मैं उनकी बनाई मूर्तियाँ वहाँ देख सकूँगी।

उनका एक मित्र भारत होकर आया था। उसकी बातें सुनकर एक दिन वेर्नर ने मुझसे पूछा -"भारत की रेल में क्या चार क्लासेज़ होते हैं ? लोग गाड़ी में बिस्तर बिछाकर सो जाते है। बहुत से लोग खड़े रहते हैं, कोई उनकी परवाह नहीं करता।" हाँ, उस समय भारतीय रेल में -फ़र्स्ट, सेकेंड, इंटर और थर्ड मिलाकर कुल चार क्लास होते थे, जो भारत के दासता-काल के द्योतक थे। वही स्थिति तब स्वतंत्रता के इतने साल बाद भी चली जा रही थी ।

एक दिन श्रीमती वेर्नर बड़े संकोच से बोली थीं - "मैंने खजुराहो मन्दिर की फ़ोटोज़ देखी थीं। मंदिर तो पूजा की जगह होती है, फिर वहाँ इतनी रोमांटिक मूर्तियाँ क्यों बनी हैं ? मुझे बड़ी हैरानी हुई।" दार्शनिक पक्ष लेकर मैंने उन्हें उस कला के लिये आश्वस्त किया था।

फिर... एक दिन मेरी मूर्ति पूरी हो गई थी। वेर्नर ने कहा - उन्हें दु:ख हो रहा है कि अब मैं उनके यहाँ आना छोड़ दूँगी । शाम का वो एक घंटा उन्हें उदास कर जाएगा। पूछने लगे कि मेरे पति कब जर्मनी आएँगे ? मैं उन्हें पहले से इसके बारे में न बताऊँ। उनके आने पर वे हम दोनों को निमन्त्रित करेंगे और मूर्ति को ढक कर, उनसे ही उसका अनावरण करवा कर, उनको आश्चर्यचकित कर देंगे। विदाई की भेंट के रूप में वह मूर्ति उनको दे देंगे। उन्हीं दिनों चीनी आक्रमण के कारण भारत सरकार ने शासकीय सेवाओं में रत लोगों के भारत से बाहर जाने पर रोक लगा दी थी। अत: मेरे पति का पूर्वनिश्चित प्रोग्राम भी निरस्त हो जाने से उन्हें वहाँ आने की अनुमति नहीं मिली थी। अन्तत:मुझे ही लौट कर आना पड़ा था। इसी बीच वेर्नर ने उस पर सफ़ेद सा रंग करके उसे श्वेत प्रतिमा बना दिया था, जो अधिक आकर्षक लगने लगी थी। उसको आधार बनाकर एक मुखौटा बनाकर, उसे भी श्वेत सा कर दिया था।

चलने से पूर्व मैं उनसे मिलने गई तो दोनों बड़े प्रेम से मिले, मिसेज़ वेर्नर ने मुझे गले लगा लिया था। मेरी ही तरह उन दोनों की आँखें भी सजल हो आईं थीं। वे बोले - " ऐसा लग रहा है कि मेरा कोई अपना मुझसे बहुत दूर चला जा रहा है। पता नहीं कि फिर कभी मिल पाएँगे या नहीं? मेरी बनाई प्रतिमा तुम्हें मेरी याद दिलाती रहेगी।"

मुझसे वो प्रतिमा उनकी ओर से अपने पति को देने को कहा था और वह मुखौटा मेरे माता-पिता के लिये उपहार दिया। मेरे पारिवारिक जीवन के लिये दोनों ने अपनी शुभकामनाएँ दी थीं। चलते समय पुन: मिलने की अधिक आशा न होने पर भी , एक बार फिर उनके साथ ही मैंने भी कहा था "आउफ़ वीडर ज़ेहेन"।

इस लम्बे अन्तराल में कुछ समय बाद उनसे सम्पर्क टूट सा गया था, क्योंकि मैं भी अपने घर परिवार के चक्करों में व्यस्त हो गई थी, वे भी कहीं और चले गए थे। नहीं जानती, अब वे कहाँ हैं ? समय का दरिया बहुत बह गया है। वे अपरिचित, जो मेरे आत्मीय से हो गए थे- उनके मुस्कुराते चेहरे, विदाई का वह क्षण आज भी हृदय में अंकित है। फिर मिलने की आशा लिये मैं अपनी आँखों से अपनी ही प्रतिमा निहारती हूँ, उनके स्नेहशील स्वभाव को, अपनेपन को याद करके सुधियों की लहरों में डूब जाती हूँ।

मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि मेरे जैसे अतिसामान्य व्यक्ति की भी कभी कोई प्रतिमा बनाएगा ?

हे मूर्तिकार! तुमको प्रणाम ॥

****

ग़ज़ल

देवेन्द्र आर्य

उसे बादल का एक टुकड़ा ओढ़ा के
मैं खुश हूँ धूप की टाई लगा के

कहो पेड़ों से कुछ आगे की सोचें
अभी से जब ये नखरे हैं हवा के

ज़रा बेग़म को भी महसूस हो कुछ
चलो एक चाय पीते हैं बना के

ज़रूरी है कि गीला ही हो कीचड़
कई आयाम होते हैं कला के

हुआ करती है औरत, पहले औरत
फिर उसके बाद कुछ भी, बच-बचा के

नहीं खलता था खाली हाथ होना
मिला करते थे हम पहले हहा के

तुम्हारी चूड़ियाँ खामोश क्यों हैं
मेरी तन्हाइयों को खनखना के

●

ख़ुद को देखूँ की वक़्त को देखूँ
बोलो ज़िंदा रहूँ तो कैसे रहूँ ?

जब खुदा ही नहीं रहा आमिर !
फिर मैं किसके लिए नमाज़ पढ़ूँ

एक से तो सलाम करना है
दोनों हाथों में कैसे लड्डू लूँ

हम सरे राह नंगे पीटे गए
निकली भी क्या किसी के मुँह से चूँ

आ ही जाएगी नोक भाषा में
पेंसिल की तरह उसे गढ़ दूँ

A -127 आवास विकास कालोनी ,शाहपुर
गोरखपुर -273006
मोबाइल - 09794840990 , 7408774544
मेल -devendrakumar.arya1@gmail.com

नागार्जुन के काव्य में प्रकृति का स्वरूप

आज़र ख़ान

बाबा नागार्जुन
30 जून 1911 - 5 नवंबर 1998

शोधार्थी,
हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
अलीगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत
कई आलेख, शोध पत्र, कहानी, कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।
ए.एम.यू. में यू.जी. सी.-जे.आर.एफ. के तहत 'हिंदी की प्रगतिशील कविता में प्रकृति'
विषय पर शोधरत।
ई. मेल-
azar786khan@gmail.com
मो. 8791102723

आधुनिक हिन्दी कविता के सामाजिक दृष्टि से जागरुक कवियों में नागार्जुन का विशेष महत्त्व है। नागार्जुन हिन्दी की प्रगतिशील काव्यधारा के सशक्त हस्ताक्षर हैं। प्रगतिशील काव्य वर्ग-संघर्ष की चेतना से युक्त सामाजिक यथार्थ का काव्य है। इन कविताओं में जनजीवन का सच्चा इतिहास दिखाई पड़ता है। नागार्जुन ने अपनी कविताओं के माध्यम से प्रगतिशील काव्यधारा को स्वस्थ दिशा प्रदान की। विषयवस्तु, संवेदना और उद्देश्य की दृष्टि से नागार्जुन मार्क्सवाद से प्रभावित हैं। प्रगातिवादी रचनाकार मार्क्सवादी जीवनदर्शन के अनुरूप मानव जीवन की व्याख्या व विश्लेषण करते हैं। नागार्जुन आम जनता के कवि हैं, उन्होंने जन-आंदोलनों का समर्थन करते हुए जनता के संगठन और उसके संघर्ष पर विशेष बल दिया। ''नागार्जुन का काव्य और हिंदुस्तान की जनता का आंदोलन, परस्पर जुड़े हुए रूप में आगे बढ़े हैं।''1 डॉ. रामविलास शर्मा नागार्जुन को जन-आंदोलन का समर्थक और संप्रदायवाद विरोधी कहते हुए लिखते हैं कि ''नागार्जुन जनांदोलन के समर्थक थे और संप्रदायवाद का विरोध करने के लिए जनांदोलन अचूक अस्त्र हैं, जनता की माँगों को लेकर आंदोलन चलाना चाहिए, नागार्जुन ऐसे आंदोलन के साथ रहे हैं। संप्रदायवाद और जातिवाद दोनों को निर्मूल करने के लिए वर्ग-संगठन और वर्ग-संघर्ष ज़रूरी है। हमारी पीढ़ी में जिन कवियों की वर्ग-दृष्टि खूब प्रखर रही है, उनमें नागार्जुन सबसे आगे हैं।''2 अत: नागार्जुन जन-आंदोलन के समर्थक और संप्रदायवाद तथा जातिवाद के विरोधी थे। संप्रदायवाद और जातिवाद को ख़त्म करने के लिए उन्होंने जनता के संगठन और उसके संघर्ष पर ज़ोर दिया।

हिन्दी में जब प्रगतिशील साहित्य का आविर्भाव हुआ, तब देश गुलामी की ज़ंजीरों जकड़ा हुआ था। भारतवासी गुलामी की इन ज़ंजीरों को तोड़ने का भरसक प्रयास कर रहे थे। प्रगतिशील साहित्य भारतवासियों की इस साम्राज्यवाद-विरोधी भावना का साहित्य है। राजनीतिक स्तर पर उसकी साम्राज्यवाद-विरोधी चेतना का संबंध मार्क्सवादी विचारधारा और गैर-मार्क्सवादी राष्ट्रीय, जनवादी प्रवृत्तियों से है। साहित्यिक स्तर पर इसका संबंध भारतेंदु युग से लेकर छायावाद तक की साम्राज्यवाद विरोधी परंपराओं से है। प्रगतिशील साहित्य के लेखकों और कवियों ने आम जन को साहित्य के केंद्र में रखा और सामाजिक यथार्थ पर बल दिया। पीड़तों और शोषकों के प्रति सहानुभूति एवं शोषकों के प्रति घृणाभाव प्रगतिशील साहित्य में मिलता है। प्रगतिशील साहित्य साम्राज्यवाद, सामंतवाद, पूँजीवाद, संप्रदायवाद, अभिजात्य वर्ग आदि का विरोधी साहित्य है। डॉ. जे. बी. ओझा लिखते हैं कि ''प्रगतिवाद निश्चय ही एक महत्त्वपूर्ण रचनात्मक आंदोलन था; जिसमें कल्पना के स्थान पर यथार्थ, आध्यात्मिकता के स्थान पर भौतिकता, सिद्धांत के स्थान पर व्यवहार, पूँजीवाद के स्थान पर समाजवाद, अभिजात्य वर्ग के स्थान पर सामान्य वर्ग, भावना के स्थान पर बुद्धि, सूक्ष्म के स्थान पर स्थूल, देवता के स्थान पर मनुष्य को वरीयता मिली।''3 प्रगतिशील साहित्य के आविर्भाव के बाद कई लेखकों और कवियों ने इसके विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। अजय तिवारी प्रगतिशील साहित्य के संबंध में लिखते हैं कि ''हिंदी रंगमंच

पर जब प्रगतिशील साहित्य का पदार्पण हुआ तब अनेक विचारों-संस्कारों के लेखक उससे जुड़े। यह एक जानी-मानी बात है कि आधुनिक कथासाहित्य के जनक प्रेमचंद तथा छायावाद के सबसे दृढ़ स्तंभ निराला और पंत ने अपने रचनात्मक और व्यक्तिगत सहयोग से प्रगतिशील साहित्य के विकास में कैसी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। छायावाद के साथ-साथ गया प्रसाद शुक्ल 'स्नेही' और उनके मंडल के जो लेखक मार्क्सवाद का प्रभाव लेकर देश की राजनीतिक और सामाजिक अवस्था पर भावुकतापूर्ण ढंग से काव्य रचना कर रहे थे, उन्होंने भी प्रगतिशील साहित्य के विकास में सहायता पहुँचाई। उनके साथ-साथ सज्जाद ज़हीर, मुल्कराज आनंद आदि तरूण मार्क्सवादी बद्धिजीवियों ने भी उसके विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया।''4

प्रगतिशील साहित्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं कि ''प्रगतिशील साहित्य तभी प्रगतिशील है जब वह साहित्य भी है। यदि वह मर्मस्पर्शी नहीं है, पढ़नेवाले पर उसका प्रभाव नहीं पड़ता, तो सिर्फ नारा लगाने से या प्रचार की बात कहने से वह श्रेष्ठ साहित्य क्या, साधारण साहित्य भी नहीं हो सकता।''5 जो साहित्य समाज को प्रगति की ओर ले जाए, जो मनुष्य के विकास में सहायक हो, वही प्रगतिशील साहित्य है।

प्रगतिशील काव्यधारा के तीन प्रमुख कवियों नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन में नागार्जुन का स्वर हमेशा जनता के साथ रहा है, इसलिए वे जनता के कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। नागार्जुन ने अपनी कविताओं में साधारण जनता और उसके संघर्ष को आधार बनाया। इसके साथ ही जब भी नागार्जुन की कविताओं की बात आती है तब नागार्जुन की प्रकृतिपरक कविताओं की चर्चा अवश्य होती है, प्रकृति के माध्यम से भी नागार्जुन जन साधारण की ही बात करते हैं, क्योंकि प्रकृति मनुष्य की सदा से सहचरी रही है। विजय बहादुर सिंह प्रकृति के बारे में लिखते हैं कि ''प्रकृति आदि मानव से लेकर आधुनिक मानव तक उसकी सहयात्री रही है। सौंदर्य और भावुकता की सबसे पहली शिक्षा उसी ने मनुष्य को दी है। नियम, रंग, विधान और उल्लास के साथ-साथ चक्राकार कालगति और सुख-दु:ख की सबसे सहज और सार्थक अभिव्यंजना प्रकृति ही करती है। वह केवल वर्ण्य विषय नहीं है। कविता को प्रेरणा भी देती है। मनुष्य में राग और आकर्षण के भाव वही भरती है। वह मनुष्य की सबसे पुरातन किंतु सबसे जीवंत सहचरी है। इस युग का मनुष्य भी उसे भूल नहीं पाया है।''6 प्रकृति की महत्ता को नेरुदा के इस कथन से समझा जा सकता है, ''एक बार नेरुदा से किसी ने पूछा, उन्हें प्रकृति से इतना प्रेम क्यों है। उन्होंने कहा कि वे 'प्रकृति से अलग होकर नहीं रह सकते'।''7 वे प्रकृति को जीवन से जोड़कर देखते हैं।

नागार्जुन ने अपनी कविताओं में प्रकृति को पर्याप्त स्थान दिया है। उनके काव्य में प्रकृति के कई रूप मिलते हैं। ''नागार्जुन की कविताओं को प्रकृति की अपार विविधता से भरे हुए एलबम की तरह देखा जा सकता है।''8 एक तरफ संस्कृत के कालिदास परंपरा की 'बादल को घिरते देखा है' वाली प्रकृति है तो दूसरी तरफ मिथिला अंचल की श्रमशील लोकप्रकृति भी है। इसके साथ ही साथ छायावादी प्रकृति भी उनके काव्य में हैं और प्रगतिवादी प्रकृति की पकी-सुनहली फसलों की मुस्कान, वहीं धान कूटती किशोरियों की कोकिलकंठी तानवाली प्रकृति का श्रम-सौंदर्य भी है।

नागार्जुन ने अपनी कविताओं में प्रकृति के जिस रूप को लिया है, अधिकांशत: वह लोकजीवन में सहभागी बनती हुई दिखाई देती है। उन्होंने प्रकृति के साधारण सौंदर्य को ही प्रमुख रूप से देखा और उसे अपने काव्य में स्थान दिया है। लोकजीवन की सुषमा और सादगी का सौंदर्य उनकी प्रकृति की मुख्य विशेषता है। उनके यहाँ प्रकृति, उनके जीवन के संघर्षों में इस तरह घुली-मिली है कि उसको अलग करके नहीं देखा जा सकता। उनके काव्य में प्रकृति कल्पना लोक की कोई परी नहीं है, बल्कि उनकी आँखों से देखी हुई, उनके संपर्क में आई हुई प्रकृति है। उनके काव्य में प्रकृति के जो अंश हमें उपलब्ध होते हैं, वे मानव जीवन में निरंतर उपयोग होनेवाले हैं। फालतू एवं अनुपयोगी प्रकृति का प्रयोग नागार्जुन के काव्य में नहीं मिलता। वे जब प्रकृतिपरक कविताएँ लिखते हैं, तब भी उनका संबंध कहीं न कहीं, किसी न किसी प्रकार मानव जीवन से अवश्य जुड़ा होता है। रामेश्वर राय लिखते हैं कि ''उनका विपुल काव्य प्रकृति और अभावग्रस्त ज़िन्दगी का विश्वकोश है। अन्याय, अभाव, दरिद्रता, भूख और विस्थापन नागार्जुन के जीवन की चट्टानी वास्तविकताएँ हैं, कविता का एजेंडा नहीं।''9 नागार्जुन अपनी कविताओं में किसी एजेंडे को लेकर नहीं चलते, बल्कि उनकी कविताओं का विषय लोकजीवन से जुड़ा होता है।

नागार्जुन के कवि मन को उमड़ते-घुमड़ते और आसमान में घिरते बादलों ने पर्याप्त रूप में आकर्षित किया है। इसलिए उन्होंने अपनी प्रकृतिपरक कविताओं में बादलों पर पर्याप्त संख्या में कविताएँ लिखी हैं। मानव जीवन में बादल बड़े उपयोगी होते हैं; क्योंकि बादलों से वर्षा होती है जो किसानों के लिए तो उपयोगी होती है, साथ ही संसार की प्रकृति भी वर्षा से ही फलती है। नागार्जुन ने काल्पनिक बादलों का नहीं, बल्कि उनकी आँखों से देखे हुए बादलों का चित्राण किया है। ''नागार्जुन का आशय है कि मैं किताबी कविता नहीं कर रहा हूँ। कहाँ है कालिदास की अलका, उनका मेघदूत। 'जाने दो, यह कवि-कल्पित था।' मैंने तो सबकुछ स्वयं अपनी आँखों से देखा है। महाकवि की महत्ता से इंकार नहीं, किंतु रचना अपनी अनुभूति से होती है, किसी और की अनुभूति उधार लेने से नहीं।''10 नागार्जुन की कविता 'बादल को घिरते देखा है' बादलों पर लिखी गई उनकी कविताओं में से एक महत्त्वपूर्ण कविता है-

''अमल धवलगिरि के शिखरों पर
बादल को घिरते देखा है।
छोटे-छोटे मोती जैसे
उसके शीतल तुहिन कणों को
मानसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों पर गिरते देखा है
बादल को घिरते देखा है।''11

बादल पर कविताएँ लिखने के साथ ही नागार्जुन ने प्रकृति के अन्य उपादानों पर भी महत्त्वपूर्ण कविताएँ लिखी हैं। उनमें नागार्जुन ने पेड़-पौधे, नदी-पहाड़, बरसात, चाँदनी, खेत और खेतों में खड़ी पकी-सुनहली फसलों आदि के विविध रूपों को उकेरा है। नागार्जुन देश और देशवासियों के लिए केवल कविता में ही चिंता नहीं करते थे बल्कि उनके लिए प्रत्यक्ष संघर्ष भी करते थे। उनका कविरूप साम्राज्यवादी, सामंतवादी व्यवस्था का विरोधी था। इन सबके साथ नागार्जुन प्रकृति से भी ख़ास लगाव रखते हैं, प्रकृति उन्हें ताज़गी देती है। शंभुनाथ के शब्दों में, ''नागार्जुन आमजन के लिए सिर्फ कविता में चिंतित नहीं थे। वह प्रत्यक्ष संघर्ष में भी कूद पड़े थे। 1939 में बिहार के किसान आंदोलन में जेल गए थे। उनके कवि का जन्म औपनिवेशिक सामंती व्यवस्था के खिलाफ खुले संघर्ष के साथ हुआ था। यह उल्लेखनीय है कि वह अपनी राजनीतिक चिंताओं के बावजूद प्रकृति से गहरा रिश्ता स्थगित नहीं करते, उन्हें प्रकृति से जीवन मिलता है। एक ऐसा सौंदर्य मिलता है, जो आशा पैदा करता है।''12 'रजनीगंधा' कविता में रजनीगंधा की महक जेल में बंद नागार्जुन के मन को पुलकित कर रही है। कवि ने उस कविता में प्रकृति का चित्रण बड़े मनोरम ढंग से किया है-

''तुम खिलो रात की रानी!
हो म्लान भले यह जीवन और जवानी
तुम खिलो रात की रानी!
प्रहरी-परिवेष्टित इस बंदीशाला में
मैं सड़ूँ सही, पर ताजी रहे कहानी
तुम खिलो रात की रानी!''13

बौद्धभिक्षु नागार्जुन प्रवास के दिनों में अपनी पत्नी को याद करने के साथ-साथ अपने जनपद की वनस्पति, वहाँ के खेतों, पेड़-पौधों, बाग-बगीचों को भी याद करने लगते हैं। कवि को जितना प्रेम अपनी पत्नी से है, उतना ही प्रेम अपने जनपद के निवासियों और खेत-खलिहानों से भी है। विजय बहादुर सिंह लिखते है कि ''नागार्जुन का प्रेम-छोह अकेले एकांत का नेह-छोह नहीं है। उसके रेशे-रेशे उस धरती में भिदे हुए हैं जहाँ उनका बचपन बीता है। इसलिए जितना प्रेम सहधर्मिणी अपराजिता के प्रति है, उससे कहीं अधिक ही अपनी जन्मभूमि मिथिलांचल के प्रति।''14 इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति उनकी कविता 'सिंदूर तिलकित भाल' में मिलती है-

''याद आता है तुझे अपना वह 'तरउनी' ग्राम
याद आती लीचियाँ, वे आम
याद आते मुझे मिथिला के रुचिर भू-भाग
याद आते धान
याद आते कमल, कुमुदिनी और तालमखान
याद आते शस्य-श्यामल जनपदों के
रूप-गुण-अनुसार ही रक्खे गए वे नाम
याद आते वेणुवन वे नीलिमा के निलय, अति अभिराम।''15

कवि का यह प्रेम अपने जनपद की प्रकृति के प्रति भी है और अपनी प्रेयसी के प्रति भी। आषाढ़ मास में कवि अपने गाँव-घर से दूर, काली घन-घटाओं को देखकर अपने गाँव को याद करता है। इसी याद की यातना में कवि अपने देश अर्थात् अपने अंचल के बारे में जानने के लिए चिंतित होने लगता है। ''नागार्जुन के यहाँ प्रकृति के ऐसे उपकरण नहीं हैं जिन्हें नया कहा जाए। दरअसल वे प्रकृति के बीच पहुँचकर उस लोक से जुड़ते हैं जो आज की कविता में लगभग गायब हो रहा है।''16 'ऋतु-संधि' कविता में कवि ने प्रकृति और प्रेम दोनों को एक साथ मिला दिया है-

''किंतु अपने देश में तो
सुमुखि, वर्षा हुई होगी एक क्या कै बार
गा रहे होंगे मुदित हो लोग खूब मलार
भर गई होगी अरे वह वाग्मती की धार
उगे होंगे पोखरों में कुमुद पद्म मखान।''17

वैसे तो नागार्जुन की कविताओं में प्रकृति के कई रूपों के दर्शन होते हैं, ''लेकिन जब कवि ग्रामीण सौंदर्य के दर्शन करते हैं तो ग्राम सौंदर्य की नूतन चारुता, पाठकों के सामने पंख फैलाती है।''18 नागार्जुन प्रवासी जीवन बिताकर कई दिनों के बाद जब अपने गाँव वापस लौटे तब उन्होंने जी भर कर अपने ग्रामीण परिवेश की प्रकृति का स्पर्श किया। इसका चित्राण उन्होंने अपनी कविता 'बहुत दिनों के बाद' में किया है-

''बहुत दिनों के बाद
अबकी मैंने जी-भर देखी
पकी-सुनहली फसलों की मुस्कान।
- बहुत दिनों के बाद
बहुत दिनों के बाद
अब की मैं जी भर सुन पाया
धान कूटती किशोरियों की कोकिल कंठी तान
- बहुत दिनों के बाद।''19

इसके साथ ही जिस धरती पर मनुष्य का जन्म हुआ, जिस पर खेल-कूद कर बड़ा हुआ, जो धरती सभी प्रकार की वस्तुओं की जननी है, उसकी विशेषताओं का वर्णन करते हुए, वे अपनी एक कविता 'धरती' में कहते हैं-

''धरती धरती है-
सचल-अचल वस्तुओं की जननी
सर्वसहनशील अन्नपूर्णा वसुंधरा
स्तुति नहीं, श्रम-कठोर श्रम मांगती
चाहती आई है सदा से धरती
कर्षण-विकर्षण-सिंचन-परिसिंचन
वपन-तपन-सेवा-सुश्रूषा
कर-चरण-तन का सचेतन संस्पर्श
सुदुर्लभ स्वेदकण... ॥''20

नागार्जुन ने अपनी एक अन्य कविता 'फिसल रही चादँनी' में चादँनी का विविध प्रकार से चित्राण किया है। इसका प्रत्येक चित्रा जो दृश्य उपस्थित करता है वह चाँदनी को जीवन प्रदान करता है, उसे गतिशील बना देता है। अब तक चाँदनी का ऐसा जीवंत रूप और कहीं देखने को नहीं मिलता। चाँदनी का यह रूप नागार्जुन को ही दिखा, उन्होंने चाँदनी को अनेक प्रकार की क्रियाएँ करते हुए दिखाया है। यह चाँदनी कहीं जम रही है, कहीं घुल और पिघल रही है, कहीं चमक, दमक और मचल रही है, तो कहीं उछल-कूद रही है-

''पीपल के पत्तों पर फिसल रही चाँदनी
नालियों के भीगे हुए पेट पर, पास ही
जम रही, घुल रही, पिघल रही चाँदनी।
पिछवाड़े बोतल के टुकड़ों पर-
चमक रही, दमक रही, मचल रही चाँदनी
दूर उधर, बुर्जी पर उछल रही चाँदनी।''21

नागार्जुन ने दूर-दूर फैले हुए गेहूँ के खेतों को 'सोनिया समंदर' कहा है। यहाँ सोने को गेहूँ के प्रतीक रूप में लिया है। पके हुए गेहूँ के दाने सोने जैसे लगते हैं, दूर-दूर खेतों में गेहूँ खड़े हैं जिनमें सोना ही सोना बिछा हुआ है। ऐसा लगता है जैसे पूरी धरती सोने से भरी पड़ी है-

''सोनिया समंदर
सामने
लहराता है
जहाँ तक नज़र जाती है
सोनिया समंदर!
बिछा है मैदान में
सोना ही सोना।
सोना ही सोना
सोना ही सोना।''22

कहा जा सकता है कि नागार्जुन की प्रकृतिपरक कविताएँ विविधताओं से भरी हैं। प्रगतिशील कवि नागार्जुन की कविताओं में प्रगतिवादी नज़रिए से प्रकृति के चित्रा बहुलता से देखे जा सकते हैं। उनकी कविताओं में प्राकृतिक-सौंदर्य के साथ-साथ मानव-सौंदर्य भी देखने को मिलता है। इसी कारण नागार्जुन की कविताओं की प्रकृति, छायावादी कविताओं की प्रकृति से भिन्न है, नागार्जुन की प्रकृतिपरक कविताओं में उपयोगितावादी दृष्टि दिखती है जो उसे छायावादी प्रकृति से अलग करती है। कालिदास, तुलसीदास, निराला की परंपरा में नागार्जुन भी लोकजन के कल्याण से जुड़े हैं। लोकजीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है, जो उनकी दृष्टि से अछूता हो। उन्होंने सदैव जनता के बीच रहकर उसके कल्याण के लिए संघर्ष किया। नागार्जुन ने भारतीय जीवन के उन सभी पक्षों को अभिव्यक्ति दी है, जो हम सभी के साथ जुड़े हुए हैं। दु:ख, दैन्य, श्रम से पस्त जीवन, टूटती आकांक्षाओं में दम तोड़ते सपने, क्रूर व्यवस्था के पाखंड, प्रजातंत्र का खोखला खेल और इनके साथ प्रकृति के समग्र उपादानों पर न्योछावर कवि की अनुभूति की वह मानवीय संसक्ति, जो जीवन को नई चेतना से अनुप्राणित कर देती है। नागार्जुन की समग्र कविता में प्रकृति की महत्ता को बताते हुए, आलोचक विजेंद्र लिखते हैं कि ''नागार्जुन की समग्र कविता जनता के संघर्ष और उसकी त्रासदी की कविता है। ऐसी कविता पढ़ते-पढ़ते जब हम मनोरम प्रकृति के बीच कुछ क्षण गुज़ारते हैं तो हम उस तनाव से थोड़ा मुक्त अनुभव करते हैं। यह भी लगता है कि जीवन निरी त्रासदी नहीं है, उसमें जीवन का सौंदर्य, उल्लास तथा उद्देश्यपरक सार्थकता बची हुई है।''23 रामेश्वर राय लिखते हैं कि ''नागार्जुन की प्रकृति संबंधी श्रेष्ठ कविताएँ मनुष्य और प्रकृति के पवित्रा संबंधों की स्मृतियों को जगाती हैं, विस्मय और तन्मयता के भाव की रक्षा करती हैं।''24 इस प्रकार नागार्जुन की प्रकृतिपरक कविताएँ मनुष्य और प्रकृति को आपस में जाड़ने का कार्य करती हैं ।

****

संदर्भ-

1. प्रो. रामेश्वर शर्मा, राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य, दिग्दर्शक चरण जैन, ऋषभचरण जैन एवं संतति प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985, पृ. 98
2. रामविलास शर्मा, 'नागार्जुन', आलोक सिंह (संपादक), स्मरण में है जीवन-3: नागार्जुन, गोदारण प्रकाशन, अलीगढ़, पृ. 38
3. डॉ. जे बी ओझा, नागार्जुन का काव्य: एक नव मूल्यांकन, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद की ओर से, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण: 2011, पृ. 11
4. अजय तिवारी, नागार्जुन की कविता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण: 1993, 2005, आवृत्ति : 2012, पृ. 190
5. डॉ. रामविलास शर्मा, मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण : 2002, पृ. 30
6. विजय बहादुर सिंह, नागार्जुन का रचना संसार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण: 2009, पृ. 74
7. विजेंद्र, 'कविता में प्रकृति की लय', नया पथ, मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, चंचल चौहान (संपादक), नागार्जुन विशेषांक, जनवरी-जून (संयुक्तांक) 2011, पृ. 264
8. रामेश्वर राय, कविता का परिसर: एक अंतर्यात्रा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 86
9. वही, पृ. 75
10. विश्वनाथ त्रिपाठी, 'हमारे जातीय सौंदर्यबोध के प्रतीक कवि', सुरेश सलिल, नागार्जुन : जीवन और साहित्य, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2014, पृ. 59
11. संपादक: शोभाकांत, नागार्जुन रचनावली भाग-1, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2003, पृ. 24-25
12. शंभुनाथ, 'नव-औपनिवेशिक संकट: नागार्जुन की लड़ाई', आलोचना त्रौमासिक, अरुण कमल (संपादक), सहस्त्राब्दी अंक तैंतालीस, अक्टूबर-दिसंबर 2011, पृ. 85
13. संपादक: शोभाकांत, नागार्जुन रचनावली भाग-1, पूवोद्धृत, पृ. 27
14. विजय बहादुर सिंह, नागार्जुन का रचना संसार, पूर्वोद्धृत, पृ. 141
15. संपादक: शोभाकांत, नागार्जुन रचनावली भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृ. 42
16. विजेंद्र, 'कविता में प्रकृति की लय', नया पथ, मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, चंचल चौहान (संपादक), नागार्जुन विशेषांक, जनवरी-जून (संयुक्तांक) 2011, पृ. 266
17. संपादक: शोभाकांत, नागार्जुन रचनावली भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृ. 71
18. प्रो. जयमोहन एमॉ एसॉ, 'नागार्जुन: तप्त जन-मानस के क्षुब्ध अंतर्यामी', आलोचना त्रौमासिक, अरुण कमल (संपादक), सहस्त्राब्दी अंक तैंतालीस, अक्टूबर-दिसंबर 2011, पृ. 144
19. संपादक: शोभाकांत, नागार्जुन रचनावली भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृ. 316
20. वही, पृ. 195
21. संपादक: शोभाकांत, नागार्जुन रचनावली भाग-2, 2003, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 132
22. वही, पृ. 304-305
23. विजेंद्र, 'कविता में प्रकृति की लय', नया पथ, मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, चंचल चौहान (संपादक), नागार्जुन विशेषांक, जनवरी-जून (संयुक्तांक) 2011, पृ. क्र. 265
24. रामेश्वर राय, कविता का परिसर: एक अंतर्यात्रा, पूर्वोद्धृत, पृ. 85-86

000

आदिवासी लोककथाओं में लोक विश्वास

प्रो.सुशील कुमार शैली

सुशील कुमार शैली, एस.डी. कॉलेज , बरनाला में प्राध्यापक हैं। तल्खियाँ (पंजाबी में), समय से संवाद (हिन्दी में कविता संग्रह), कविता अनवरत-1, काव्यांकुर-3, सारांश समय का (सांझा संकलन) विभिन्न पंजाबी, हिन्दी पत्रिकाओं में रचनाएँ व शोधालेख प्रकाशित
संपर्क- एस. डी कॉलेज, बरनाल
हिन्दी विभाग
के. सी रोड़ ,बरनाला (पंजाब) 148101
मो - 9914418289
ई.मेल- shellynabha01@gmail.com

लोक कविताएँ लोक साहित्य का अभिन्न अंग होती हैं, जिन का संबंध लोक से जुड़ी वाचिक परंपरा से होता है। लोक संस्कृति की संरक्षिका लोक कथाएँ ही होती हैं। यह लोक भाषा अथवा बोली में परम्परा से वाचिक रूप से चली आतीं प्रचलित लोक कहानियाँ ही होती हैं जो सदियों से एक पीढी से दूसरी और दूसरी से तीसरी पीढ़ी के सतत् क्रम में प्रवाहित होती चली आ रही हैं। इन में लोक मानस की भावनाएँ, दुख-सुख, आशा-निराशा, आस्था, विश्वास, परंपराएँ, रीति-रिवाज और प्रथाएँ निहित होती हैं। लोक विश्वास इन लोक कथाओं के अभिन्न अंग हैं। इन्हीं विश्वासों पर लोक जीवन आश्रित होता है। लोक जीवन में अनेक विषयों से संबंधित लोक विश्वास पाए जाते हैं जैसे -तंत्र-मंत्र, टोना-टोटका, भूत-प्रेत, देवी-देवताओं की शक्तियाँ, शकुन-अपशकुन, प्राकृतिक चिह्न आदि।

'आदिवासी' शब्द दो शब्दों आदि और वासी से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है- मूल निवासी। पुरातन लेखों में आदिवासियों को अत्विका और वनवासी भी कहा गया है। महात्मा गांधी ने इन्हें गिरिजन कहकर पुकारा है। संविधान की आठवीं अनुसूची में आदिवासियों को अनुसूचित जनजातियों के रूप में मान्यता दी गई है। अक्सर इन्हें अनुसूचित जातियों के साथ एक ही श्रेणी 'अनुसूचित जातियों और जनजातियों' में रखा जाता है। आदिवासी मुख्य रूप से भारतीय राज्यों उड़ीसा, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल में अल्पसंख्यक हैं, जबकि भारतीय पूर्वोत्तर राज्यों में बहुसंख्यक हैं।

आदिवासी लोककथाओं में लोक विश्वास

भारत में अनेक आदिवासी जातियाँ अपनी मौलिक मान्यताओं, रीतिरिवाज के साथ जीवनयापन कर रही हैं। इन जातियों के पास अपना प्रचलित वाचिक लोक साहित्य है, जिन में उनकी संस्कृति, सामाजिक संरचना, मान्यताएँ, रीतिरिवाज, विश्वास सहज रूप में विद्यमान हैं। अपने इस वाचिक परम्परागत साहित्य को आदिवासी पुरखा साहित्य कहते हैं। इन जनजातियों में लोक कथाओं का जो रूप आज भी विद्यमान है, वह लोक कथाओं के उस आरम्भिक रूप के सर्वाधिक निकट है जो विचार सम्प्रेषण की आरम्भिक प्रक्रिया के समय था। इनका उद्देश्य मात्र मनोरंजन नहीं है, इनके माध्यम से अनुभवों का आदान प्रदान, मानव शिक्षा, सद्कर्म का महत्व निहित है। इनमें मनुष्य के जन्म, पृथ्वी के निर्माण, देवताओं के व्यवहार, भूत -प्रेत, राक्षसों आदि से संबंधित उनके सारे विश्वास भी निहित हैं।

सृष्टि के विकास के संबंध में लोक विश्वास

विभिन्न आदिवासी जातियों में सृष्टि के निर्माण के संबंध में विभिन्न-विभिन्न विश्वास हैं। बंगाल की भुइया जनजाति की लोक कथा के अनुसार- पहले पृथ्वी पर महासागर के अतिरिक्त कुछ नहीं था। चारों तरफ जल ही जल देख ईश्वर ने एक पुरुष और एक स्त्री को उत्पन्न किया। लेकिन उन के चलने से पृथ्वी कांपने लगती थी । तब ईश्वर ने एक राई बाघ और एक राई बाघिन को उत्पन्न कर आदेश दिया कि मनुष्य जोड़े को मारकर उनका रक्त और मांस चारों कोनों में डाल दो। उन्होंने ऐसा ही किया। तब पुरुष (परिहार) की सात अस्थियों से सात चट्टानें, पैरों से विशाल पेड़, अन्य अस्थियों से पत्थर, सिर से सूर्य और सीने से चंद्रमा बना। इस प्रकार एक सुन्दर सृष्टि की रचना हुई। अंत में एक पुरुष स्त्री जोड़ा उत्पन कर ईश्वर ने उन्हें परस्पर संसर्ग से नवीन जोडों को उत्पन्न करने का अधिकार दिया (पृ. 246)। उरांव जो मूलत: द्रवीडियन परिवार के हैं तथा पश्चिम बंगाल में निवास करते हैं, में प्रचलित लोक कथा के अनुसार परमात्मा धरमेस ने मानव संसार बसाने के लिए पृथ्वी का सृजन किया। उस समय पृथ्वी महासागर में तैरती थी। तब उसने अपनी पत्नी पार्वती के कहने पर इसे कछुए की पीठ पर रखा और केकड़े को कछुए के पास नियुक्त कर दिया था जो वह उसे अपने हाथों से जकड़े रखे। यद्यपि कभी कभार यह कछुआ थककर थोड़ी बहुत चेष्टाएँ करता है तो भूकम्प आता है। (पृ.318) कुछ ऐसी ही कथा मध्यप्रदेश की गोण्डो की उपजाति अगरिया में भी प्रचलित है, जिसके अनुसार परमात्मा ने सृष्टि बनाई तो वह अस्थिर थी। तब उसने दो मनुष्य बनाए बैगा और अगरिया जिन्होंने उसे स्थिर किया और मानव जाति का विकास किया । (पृ. 325) इन जातियों में सृष्टि के विकास के संबंध में बहुत कम अंतर है - पृथ्वी का जल मग्न होना, अस्थिर होना, फिर स्थिर होना, फिर विनाश और फिर पुन: सृजन भी सभी लोक कथाओं में विद्यमान हैं।

मनुष्यों के जन्म के संबंध में

सृष्टि रचना के बाद पृथ्वी पर मानव की उत्पत्ति और मानव समाज की वृद्धि के संबंध में अलग-अलग धर्मों में अलग-अलग विश्वास हैं। जिनके संबंध में हमें पुराणों, ग्रथों में कथाएँ मिलती हैं। कुछ ऐसी ही मान्यताएँ हमें आदिवासी लोक कथाओं में मिलती हैं। आदिवासी अपने ईष्ट को मानव की उत्पत्ति करने वाला मानते हैं। अंडमानी जनजातीय समूहों के अनुसार पुलुगा देवता से बडा कोई देवता नहीं है। उसने अंडमान में माईया डुकू को पैदा किया। माईया डुकू अंडमान का आरम्भिक पुरुष था ।(पृ. 94) बैगा जनजाति के अनुसार भगवान् ने सृष्टि रचना के बाद नांगा बैगा और नांगा बैगिन को पृथ्वी पर भेजा। दोनों के एक दूसरे को छूने से नांगा संतति का जन्म हुआ। इसलिए नांगा बैगा और नांगा बैगिन संसार के पितृदेव और मातृदेवी हैं ।(पृ. 169) इसी प्रकार भइया (पश्चिम बंगाल) और जुआंग जनजाति परिहार और बरमनी को सृष्टि के आदिम स्त्री पुरुष मानते हैं, जिन्हें परमात्मा ने उत्पन्न किया । खरिया (रांची) और लखेर (मिजोरम) जनजातियाँ परमात्मा पोनोमोसोर और खंजगपा के हाथों सृष्टि के विनाश के बाद एक भाई बहन के बच जाने और उनके परस्पर संसर्ग से मानव जाति का विकास मानते हैं। खरिया समुदाय के अनुसार परमात्मा पोनोमोसोर ने संसार बनाया तथा स्त्री पुरुष की मूर्ति बनाकर बरगद के पेड़ के नीचे रख दी । बरगद के दूध से वह जीवित हुई। उस युगल ने अपने कृत्यों से परमात्मा पोनोमोसोर को नाराज़ कर दिया तथा परमात्मा ने सृष्टि का विनाश किया (पृ.-370) मानव जाति की सृष्टि पर उत्पत्ति चाहे जिस प्रकार भी हुई हो लेकिन आदिवासी लोक कथाओं से हमें उनकी मान्यताओं का बोध ज़रूर होता है।

गोदना से संबंधित लोक विश्वास

गोदना आदिवासी समुदायों में बहु प्रचलित प्रथा है। जिसके साथ उनकी पहचान जुड़ी है। गोदना जहाँ व्यक्ति से व्यक्ति की अलग पहचान से संबंधित है, वहीं यह समुदायों की अलग-अलग पहचान का भी चिह्न है। जिस में आदिवासी जड़ी-बूटियों के पक्के रंग से सूई के माध्यम से अपने शरीर के किसी भाग पर बेल बूटे आदि बनाते हैं।

सभी आदिवासियों में इस प्रथा के आरम्भ से संबंधित एक जैसी मान्यताएँ प्रचलित हैं। भाडिया (मध्यप्रदेश के जबलपुर), कोरकू (मध्यप्रदेश के वनप्रांत सतपुड़ा) और भारिया समुदाय में यह कथा यमराज से संबंधित है। पृथ्वी पर स्त्री पुरुष की अलग अलग पहचान करना कठिन था। मृत्यु के बाद यमराज को जीवों की पहचान में बहुत कठिनाई आती थी। तब उस ने अलग-अलग माध्यमों से जीवों को अपने शरीर पर गोदना गुदवाने का महत्त्व बताया। इसीलिए लगभग सभी समुदायों में मान्यता है कि मृत्यु के बाद शरीर भले ही यहीं रह जाए किन्तु शरीर पर गुदा गोदना आत्मा के साथ यमराज के पास तक जाता है और यमराज को व्यक्ति की पहचान में सहायता करता है।

अलौकिक शक्तियों के संबंध में लोक विश्वास

आदिवासियों की धारणा है कि परमात्मा अपने भलेपन के तहत से पशु पक्षियों के माध्यम से बात करता है। 'हंसराज घोड़ा और मुखबोलता तोता' (मुण्डा लोककथा) कथा राजकुमार की सहायता विभिन्न पशु पक्षी ही करते हैं। (पृ 14) आदिवासी लोक मुख्य रूप से प्रकृति पूजक हैं। वह प्राकृतिक तत्वों को देव रूप में मानते हैं। सूर्य, नदी, पर्वत, वृक्ष, वन, पशु आदि की वह पूजा करते हैं। प्रकृति के विनाशकारी रूप से रक्षा के प्रयोजन ने उनमें प्रकृति पूजा संबंधी लोक विश्वासों को समय समय पर उद्‌भव किया। भुमाती देवी, ग्राम देवता, वन देवता आदि की पूजा यह इसी उद्‌देश्य से करते हैं।

जादू टोना और भूत प्रेतों से संबंधित लोक विश्वास

आदिवासी लोक जादू टोना, भूत प्रेत में विश्वास रखते हैं। बैगा जाति में झाड फूंक करने वाले को 'गुनिया' तथा कोरकू जनजाति में झाड फूंक करने वाले पुरुष को 'पडियार' तथा स्त्री को 'भगटो - डुकरी' कहते हैं। गोण्ड जनजातियों में 'बैगा' और 'भूमका' से झाड फूंक करवाते हैं। लखेर जनजातियों का विश्वास है कि देवता झेंग दुष्ट आत्माओं से रक्षा करते हैं।

कथानक रूढ़ियाँ

आदिवासी लोक कथाओं में हमें कई ऐसी कथानक रूढ़ियाँ मिलती हैं जिनका आधार सिर्फ लोक विश्वास है। कथाओं में यह रूढ़ियाँ बीना किसी तर्क के अपने सहज सरल रूप में चली आ रही हैं। इन कथानक रूढ़ियों में जहाँ चमत्कार हैं, वहीं यह कथाओं में रोचकता प्रदान करतीं आदिवासी संस्कृति और प्राकृतिक जीवन से हमारा परिचय कराती हैं। 'केले का पेड़ और गेंदे का फूल' (बिरहोर लोककथा) में एक साधु राजा को कहता है " हे राजन् ! तुम अपनी ढाल और तलवार लेकर आम के उपवन में जाओ। अपनी तलवार से आम तोडकर उन्हें अपनी ढाल पर रोक लेना। जितने आम तुम्हारी ढाल पर आ जाएँगे उन्हें तुम अपने महल में लेजा करक अपनी रानियों को खिला देना। इससे तुम्हें संतान की प्राप्ति होगी।" यह एक लोक धारणा है, जो भारतीय गाँवों में 'झोली में फल डालने' के नाम से प्रसिद्‌ध है। लंगडे भूत का पीपल के पेड़ के नीचे रहना, भूत का सुंदर, स्वस्थ युवक का वेश धारण कर लेना ,(लंगड़ा भूत- दोरला लोककथा) हिरणी दवारा राजा का मूत्र मिला हुआ गड्‌ढे का पानी पी लेने से गर्भवती हो जाना (हिरणी का छउआ - मुण्डा लोककथा), राजा के स्वप्न में हंस के समान सुंदर श्वेत रंग का घोड़ा और मनुष्यों की बोली बोलता तोता दिखाई देना (हंस राजा तोता और मुखबोलता तोता -मुण्डा लोककथा) ऐसी ही अनेकों कथानक रूढियां जिनका संबंध परियों, भूत -प्रेत, देवी - देवताओं, शाप, पशु पक्षी, से है आदिवासी लोक कथाओं का श्रंगार हैं।

निष्कर्ष

आदिवासी लोक कथाओं में आदिवासी सामाजिक संरचना, धार्मिक मान्यताओं, रीतिरिवाज, संस्कृति और उनकी सम्पूर्ण दिनचर्या देखने को मिलती है। यह रचनाएँ केवल मनोरंजन के उद्‌देश्य से निर्मित नहीं हैं यह अपनी सहजाभिव्यक्ति और भलेपन के साथ मानव को प्रकृति का सान्निध्य प्रदान कर उसे सत् कर्म की शिक्षा देती हैं। इन के केंद्र में वो नैतिक मूल्य हैं जिनसे हम शून्य हो गए हैं। आदिवासियों की संस्कृति से अनभिज्ञ हम उन्हें विचित्र दृष्टि से देखते हैं और उन्हें अपने से भिन्न मानते हैं। जिसका मुख्य कारण आदिवासी पुरखा साहित्य के प्रति हमारा अज्ञान है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1 शरद सिंह, भारत के आदिवासी क्षेत्रों की लोककथाएं ,नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली -110070, चौथा संस्करण 2013 ।

2 सं. रमणिका गुप्ता, आदिवासी साहित्य यात्रा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008 ।

****

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण

(देखें नियम 8)

विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान :
सीहोर, मध्य प्रदेश

2. प्रकाशन का अंतराल : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : जुबैर शेख़
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं
पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं
पता : पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं
स्वमी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं
पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

हस्ताक्षर

पंकज कुमार पुरोहित
प्रकाशक
दिनांक 25 फरवरी 2016

नवगीत

शशि पुरवार

शशि पुरवार को कहानी, कविता, लघुकथा, काव्य की अलग-अलग विधाएँ - गीत, नवगीत, दोहे, कुण्डलियाँ, ग़ज़ल, छन्दमुक्त, तांका, चोका, माहिया, हाइकु , व्यंग्य और लेखों के माध्यम से जीवन के विभिन्न रंगों को उकेरना पसंद है। सपने नाम से एक ब्लॉग भी लिखती हैं। नारी विमर्श के अर्थ, उजास साथ रखना (चोखा संकलन), त्रिसुगंधी काव्य संकलन, आधी आबादी (हाइकु संकलन), शोध दिशा फेसबुक कविता अंक एवं संकलन , स्वातंत्रोत्तर हिन्दी कविता दशा और दिशा, 21 वीं सदी की महिलाएँ में रचनात्मक सहयोग।

पाँव जलते हैं हमारे

शाख के पत्ते हरे कुछ
हो गए पीले किनारे
नित पिघलती धूप में
पाँव जलते हैं हमारे।

मिट रहे इन जंगलों में
ठूँठ जैसी बस्तियाँ हैं
ईंट पत्थर और गारा
भेदती खामोशियाँ है
होंठ पपड़ाये धरा के
और पंछी बेसहारे।

चमचमाती डामरों की
बिछ गई चादर शहर में
लपलपाती सी हवा भी
मारती सोंटे पहर में
पेड़ बौने से घरों में
धूप के ढूँढ़ें सहारे।

गाँव उजड़े, शहर रचते
महक सौंधी खो गई है
पंछियों के गीत मधुरम
धार जैसे सो गई है
रेत से खिरने लगे है
आज तिनके भी हमारे
नित पिघलती धूप में
ये पाँव जलते है हमारे
000

बाँस वन में गीत गूँजे

बाँसुरी अधरों छुई
बंशी बजाना आ गया
बाँसवन में गीत गूँजे, राग
अंतस छा गया

चाँदनी झरती वनों में
बाँस से लिपटी रही
लोकधुन के नगमें गाती
बाँसुरी, मन आग्रही
रात्रि की बेला सुहानी
मस्त मौसम भा गया।

गाँठ मन पर थी पड़ी, यह
बाँस सा तन खोखला
बाँस की हर बस्तियाँ , फिर
रच रही थीं श्रृंखला

पाँव धरती में धँसे
सोना हरा फलता गया।

लुप्त होती जा रही है
बाँस की अनुपम छटा
वन घनेरे हैं नहीं अब
धूप की बिखरी जटा

संतुलन बिगड़ा धरा का,
जेठ, सावन आ गया
000

बिकने लगे हैं भ्रम

आस्था के नाम पर,
बिकने लगे हैं भ्रम
कथ्य को विस्तार दो,
यह आसमाँ है कम।
लाल तागे में बँधी
विश्वास की कौड़ी
अक्ल पर जमने लगी, ज्यों
धूल भी थोड़ी
नून राई, मिर्ची नींबू
द्वार पर कायम
द्वेष, संशय, भय हृदय में
जीत कर हारे
पत्थरों को पूजतें, बस
वह हमें तारे
तन भटकता , दर-बदर
मन खो रहा संयम
मोक्ष दाता को मिली है
दान में शैया
पेंट ढीली कर रहे, कुछ
भाट के भैया
वस्त्र भगवा बाँटतें,
गृह, काल, घटनाक्रम।
000

भीड़ का हिस्सा नहीं हूँ

ज़िंदगी के
इस सफर में
भीड़ का हिस्सा नहीं हूँ
गीत हूँ मैं,
इस सदी का
व्यंग्य का क़िस्सा नहीं हूँ
शाख पर
बैठे परिंदे
प्यार से जब बोलते हैं
गीत भी
अपने समय की
हर परत को खोलते हैं
भाव का
खिलता कँवल हूँ
मौन का भिस्सा नहीं हूँ
शब्द उपमा
और रूपक
वेदना के स्वर बने हैं
ये अमिट
धनवान हैं जो
छंद बन झर झर झरे हैं
प्रीति का मधुमास हूँ
खलियान का मिस्सा नहीं हूँ
अर्थ बिंबों में समेटे
राग रंजित मंत्र प्यारे
कंठ से
निकले हुए स्वर
कर्ण प्रिय
मधुरस नियारे
मील का
पत्थर बना हूँ
दरकता
सीसा नहीं हूँ।
000

रूखे-रूखे आखर

हस्ताक्षर की कही कहानी
चुपके से गलियारों ने
मिर्च-मसाला, बनती ख़बरें
छपी सुबह अख़बारों में।
राजमहल में बसी रौशनी
भारी भरकम खर्चा है
महँगाई ने बाँह मरोड़ी
झोंपड़ियों की चर्चा है
रक्षक, भक्षक बन बैठे हैं
खुले आम दरबारों में।
अपनेपन की नदियाँ सूखी,
सूखा खून शिराओं में
रूखे-रूखे आखर झरते
कंकर फँसा निगाहों में
बनावटी है मीठी वाणी
उदासीन व्यवहारों में।
किस पतंग की डोर कटी है
किसने पेंच लड़ाएँ हैं
दाँव-पेंच के बनते जाले
सभ्यता पर घिर आये हैं
आँखें गड़ी हुईं खिड़की पर
दृश्य नए आकारों में.....
000

याद की खूशबू हवा में....

गाँव के बीते दिनों की,
याद आती है मुझे
याद की ख़ुशबू हवा में
गुदगुदाती है मुझे।
धूल से लिपटी सड़क पर
पाँव नंगे दौड़ना
वृक्ष पर लटके फलों को
मार कंकर तोड़ना।
जीत के हासिल पलों को
दोस्तों से बाँटना
और माँ का प्यार की उन
झिड़कियों से डाँटना।
गंध साँसों में घुली है
माटी बुलाती है मुझे
याद की ख़ुशबू हवा में...
नित सुहानी थी सुबह
हम खेलते थे बाग़ में
हाथ में तितली पकड़ना
खिलखिलाना राग में
मस्त मौला उम्र थी
मासूम फितरत से भरी
भोर शबनम सी खिली
नम दूब पर जादूगरी
फूल पत्ते और कलियाँ
फिर रिझाती है मुझे
याद की ख़ुशबू हवा में ....
गाँव के परिवेश बदले
आज साँसे तंग हैं
रौशनी के हर शहर
ज़हरी धुएँ के संग है
पत्थरों के आशियाँ है
शुष्क संबंधों भरे
द्वेष की चिंगारियाँ है
नेह खिलने से डरे
वक़्त की सरगोशियाँ
पल-पल डराती हैं मुझे।
गाँव के बीते दिनों की
याद आती है मुझे
याद की ख़ुशबू हवा में
गुदगुदाती है मुझे।
गाँव के बीते दिनों की.....
000

सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कविताएँ

खिड़कियाँ

उस दिन
अचानक
खिड़कियाँ
खुली रह गईं
और हवा ने
अंदर घुस कर
अन्यथा
मनमानियाँ
कर डाली -
करीने से
सजी-रखी
चीज़ों के
रंग और ढंग
बदल डाले -
बिस्तर की
चादर उड़ कर
अलानी-खाट
रह गई-
रसोई के बर्तन
एक रोंस से
सरक कर
दूसरी रोंस
पर-सीधे मुँह
खड़े हो गए -
मेज़ की
तश्तरियाँ
इधर-उधर
बिखर कर
कमरे में
फ़ैल गई
मेज़ पर रखे
गुलदस्ते
के फूल
ब्रास की
मूर्ति पर
कुर्बान हो गए -
इसी तरह
सारा घर-लगा
तितर-बितर
हो कर -बेतरतीब
लगने लगा -
अपनी भूल पर
गुस्सा आया
और चीज़ें
समेटते -समेटते
हाथ ठिठक गए-
लगा-जो
जहाँ-होना
चाहिए-
वहीं हुआ
जहाँ नहीं
होना चाहिए
नहीं हुआ -
कहीं अति
करीना-पन
डस रहा है हमें -
मैं चुपचाप
बैठ कर
चीज़ों को देखती रही
और सोचती रही
कभी -कभी
खिड़की खुली ही
रहनी चाहिए
प्रकृति और
हवा को
अंदर-बाहर हो कर
सब कुछ प्रकृतिस्थ
कर देना
चाहिए।

000

सूरज नहीं उगेगा, जलाक, रेत के घर, न भेज्यो बिदेस, अब के बिछड़े सुदर्शन प्रियदर्शिनी के उपन्यास हैं।
उत्तरायण (कहानी संग्रह), शिखंडी युग, बराह , यह युग रावण है, मुझे बुद्ध नहीं बनना (कविता संग्रह), मैं कौन हाँ (पंजाबी कविता संग्रह) हैं। कई सम्मानों से सम्मानित संप्रति अमरीका की ओहायो नगरी में स्वतंत्र लेखन में रत हैं।
सम्पर्क : 246 stratford Drive, Broadview Hts. Ohio 44147. U.S.A
ईमेल :sudarshansuneja@yahoo.com

भय

खिड़की के
काँच के पार
अँधेरे में
मेरी अपनी ही
आँखे -आर -पार
होती और लौट
कर
मुझे ही देखती हैं —

अपना ही चेहरा
काँच के विरुद्ध
झिलमिलाता
और
अँधेरे को
काटता -पीटता फिर
वापिस -अपने
हाथों पर
बैठ जाता है —

कैसी ऊहापोह की
स्थिति है -कि
बाहर भी
भय और अंदर भी
दोनों भय
मिल कर
ज़िन्दगी के
आर-पार
छलांग रहे हैं
बाहर सिर्फ
भय का
अँधेरा है
000

अनाहूत

मैं देख रही हूँ
दरीचों से
तुम्हारे पाँव,
तुम मेरे दरवाज़े पर
खड़ी दस्तक
दे रही हो ...
यों देखती आई हूँ तुम्हें
धकियाते हमारे द्वार
समय-समय पर
अपनी भयावह
ताड़नायों -प्रताड़नायों
और सुसंस्कृत-मायावी-सम्भ्रांत
रोगों के साथ ...
संताप-आँधियों
काल के भिन्न-भिन्न
रूपों के थपेड़ों के
रूप में-दस्काती
हमारे द्वार
आती
और लौट जाती.....
डर की सीमांओं तक
उड़ेलती
अपना भयावह
खौफ ...
भयभीत हम
तुम्हारे इस
दबदबे के नीचे
उम्र भर
इस से डर
उस से डर
तुम से डर
और
सहमी पड़ी रही
मन की उत्ताल तरंगें
जिन्हें
तुम ने कभी
उठने न दिया
जीने न दिया ...
पर अब तुम्हारे
पाँवों की बेसुरी
रुनझुन -
तुम्हारे मायावी
डरावों से मैं
डरती नहीं -
क्योंकि मैं
जान गई हूँ
तुम्हारा समय
निश्चित है
ना आगे
ना पीछे
ना कम
ना ज़्यादा
तो आज रहो
दरवाज़े की दरीचों से
झाँकती -निहत्थी-बेबस
क्योंकि
अभी मेरा समय
नहीं आया है ...!
000

रिश्ते

क्यों बंद हैं
सारे दरवाज़े
भितियाँ -
झरोखे दरीचे
खोहें ...
और अंदर
तक धँसी
कुटीरें
मैं साँस कैसे
लूँ

सूख गये हैं
सारे रिश्ते ...
कोई आवाज़
नहीं आती
कोई आवाज़
नहीं देता
सारी रात
बरसती है
मूसलाधार
घनघोर
बिजली -
गर्जना के
साथ -
झंझावत
सी वर्षा
और डरा
देती है
मुझे अंदर तक
बे आवाज़
घर की
सूनी दहलीज़ ....
000

हरकीरत हीर की क्षणिकाएँ

उदासी...
उफ़्फ़ ...
ये ज़ेहन की उदासियाँ
ये सुलगती खामोशियाँ
अय दर्द ! ले ....
हमने आग को चूमकर
ज़िंदगी तेरे हवाले कर दी .....
000

आह ....
इन अक्षरों को
कभी छूने की कोशिश मत करना
जलकर राख़ हो जाएँगी
तुम्हारी अँगुलियाँ ...
ये महज़ काग़ज़ पर लिखे अक्षर नहीं
किसी की दर्द से निकली
इक आह है .....
000

पत्थर ज़मीं...
पत्थर हो गई है ज़मीं
मेरे दर की, जहाँ से ....
ख़ामोश लौट गई थीं
तेरी सदा .....
दस्तक दिए बगैर ...
सदा - आवाज़
000

ये कौन आया ....
मुहब्बत के गलियारे से
ये कौन आया है
इश्क़ की सीढ़ियाँ चढ़कर
के सर्द से इस मौसम में
धूप का इक टुकड़ा हौले से
मुस्कुराया है ...
इक बुझा हुआ ख़्याल
फिर रंग लाया है .....
000

लिबास ....
जब से तुमने
उछाले हैं मेरी ओर
नंगे और बेहूदा लफ़्ज़
मेरी नज़्म ने
ख़ुदकुशी की रस्सियाँ तोड़
ओढ़ लिया है आग़ का लिबास....
000

हवाएँ ....
कभी -कभी सोचती हूँ
हवाएँ अगर रुख़ न मोड़ती तो
नदी के दो किनारों की तरह ही सही
हम साथ -साथ चलकर
हँस सकते थे .....
000

तलाक़....
सारी रात
ख़्याल आते जाते रहे
वक़्त घड़ी की सुइयों पर बैठा
हँसता रहा ...
न सोचों ने रिश्वत ली
न दर्द ने ख़्यालों से तलाक़ लिया
नज़्म सहमी सी फ़टे काग़ज़ों में
जीती मरती रही .....
000

निशानात ...
कैसे हैं ये पोरों में
सुइयों के निशानात
कोई दुआ हाथों से गिरी है आज
ख़ामोशी के लिहाफ़ में लिपटी रात
दर्द के टुकड़े उठा लाई है
खौफ़जदा नज़्म दुआ के लिए
रात भर आसमाँ में
इक टूटे तारे को ढूँढ़ती रही .....
000

इक्कीस के करीब विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं से विशिष्ट सम्मानों से सम्मानित हरकीरत 'हीर' के इक-दर्द, दर्द की महक, खामोश चीखाँ - (पंजाबी काव्य संग्रह), खामोश चीखें (हिन्दी -काव्य संग्रह), अवगुंठन की ओट से सात बहने -काव्य संग्रह (संपादन), 'माँ की पुकार' 60 कवियों की माँ विषयक रचनाओं का काव्य संग्रह (संपादन), दीवारों के पीछे की औरत (काव्य संग्रह), 20 काव्य - संग्रहों में रचनाएँ शामिल।
संपर्क : 18 ईस्ट लेन , सुंदरपुर हॉउस न-5 , गुवाहाटी- 781005 (असम) मो. 9864171300

रमेश मित्तल की कविताएँ

एहसास

हम दोनों के बीच
एक द्वंद्व था अहम् का
तुम मानती थी
खुद को बड़ा
और नहीं मानता था मैं भी
खुद को, किसी भी तरह
तुमसे कम।
हम दोनों ही
बदल लेते थे अपना रास्ता
देखकर एक-दूसरे को...
अहंकार कम नहीं है
सूरज और चाँद में भी
रोशन करते हैं दोनों
सारी धरा को
दोनों मानते हैं खुद को
एक-दूसरे से बड़ा
मुँह फेर चल देता है तभी
एक को देखकर दूसरा
कोशिश ही नहीं की कभी
ना तो चाँद ने
ना सूरज ने
और ना ही
हम दोनों में से किसी ने भी
जानने की
क्या होती है खुशी
छोटा बनकर
संग रहने में
तारों की तरह...
000

नहीं देखा तुमने

तुम पीढ़ी हो आज की.....
तुमने नहीं देखा
दादी, नानी को फूँकनी से
चूल्हे में सुलगाते गोसों को....
आँखे मलते, धुँए के बीच
कच्ची मिटटी के चूल्हे में
रिश्तों को पकाते....
एक ही तवे पर सिकते
फुल्के से निकलती
भाप की तपिश से
चाचा-ताऊ, ननद-भावज, सबके बीच
आपसी रिश्तों में
गर्माहट को बरकरार होते.....
मैंने देखा है धुँआ
आग सुलगने से पहले का.....
और तुमने
आग बुझने के बाद का.....
मैंने देखा है
रिश्तों को धधकती आग में कुंदन होते
तुम पीढ़ी हो आज की
तुमने देखा है सिर्फ़
रिश्तों को धुँआ होते.....
000

ऑनलाइन बाज़ार

नहीं ज़रूरत आजकल
बाज़ार का शिकार बनने के लिए
बाज़ार जाने की,
पैठ जमा ली है
हमारे घरों के भीतर ही
बाज़ार ने।
करोड़ों वस्तुओं की भूलभलैया में
भटकाता है हमें बाज़ार
चस्पा कर हरेक पर
उसका दाम
वंचित करता हमें
मोलभाव के रसपान की क्रिया से
आसपास के बाज़ार के हो-हल्ले से परे
निहायत शांत माहौल में भी
चीज़ों की लम्बी फेहरिस्त से ललचाकर
करता हमारे मन को अशांत
मोबाइल, लैपटॉप की शीशे की दीवार से
दिलवाता विंडो-शॉपिंग का लुत्फ़
बाज़ार जाकर, जहाँ
खरीदते हैं हम अधिकतर
ज़रूरत की ही चीज़
यहाँ वो सब भी खरीद लेते हैं

रमेश मित्तल भिवानी, हरियाणा से हैं। भारत सरकार में कार्यरत हैं। 40-41 साल की उम्र में लिखना शुरू किया....और हिन्दी चेतना तथा सृजनगाथा में कविताएँ प्रकाशित हुईं...
संपर्क :708, सेक्टर 19 पॉकेट 3 अक्षरधाम अपार्टमेंट्स, द्वारका, दिल्ली - 110075
ईमेल:rmtl68@yahoo.com

जिनके ना होने पर भी
पूरी हो रही थी
ज़िन्दगी की ज़रूरतें
कैसे-कैसे आकर्षण में बाँधता मन को
क्रेडिट कार्ड, डिलीवरी पर भुगतान की
सुविधा के साथ।
खाली जेब भी खरीदवाता
बाज़ार, चीज़ों को
हमें साहूकार के भरम में रख
चाहे लटकती रहती हो
सिर पर उधार की तलवार
इतराते हम
नचा रहे हैं बज़ार को
अपनी उँगलियों के इशारों पर
और, मंद-मंद मुस्काता बाज़ार
कैसे कर रक्खा है उसने
अपने वश में
हमारे ही घर में हमें
खरीद रहे हैं हम बाज़ार को
या खरीद रहा है बाज़ार
हमें, हमारी इच्छाओं को...
000

सपने

कब देखे मैंने
अपने आप सपने
ये तो हक़ीक़त से डर
मुंद जाती हैं
जब मेरी आँखें
तो मेरी आँखों में उग आई
खौफ़ की झिल्ली पर
जम जाती है
सपनों के झूठ की
एक मोटी-सी परत
जिसमें महसूस करता हूँ, मैं
खुद को
हक़ीक़त के डरावने सच से
महफ़ूज़
अब इसमें क्या क़सूर है मेरा
जी रहा हूँ मैं यदि
सपनों के सहारे
झूठ के सहारे...
000

अशोक आंद्रे की कविताएँ

फुनगियों पर लटका एहसास, अंधेरे के ख़िलाफ, समय के गहरे पानी में ,गुब्बारे में कैद सपने, दूसरी मात अशोक आंद्रे के कहानी संग्रह, कथा दर्पण (संपादित कहानी संकलन), सतरंगे गीत , चूहे का संकट (बाल-गीत संग्रह), नटखट दीपू (बाल कहानी संग्रह), 'साहित्य दिशा' साहित्य द्वैमासिक पत्रिका में मानद सलाहकार सम्पादक और 'न्यूज ब्यूरो ऑफ इण्डिया' में मानद साहित्य सम्पादक के रूप में कार्य किया। कई सम्मानों से सम्मानित संप्रति स्वतंत्र लेखक हैं।
सम्पर्क: 188/GH-4,मीरा अपार्टमेंट्स,पश्चिम विहार,नई दिल्ली - 110063
ईमेल: ashok_andrey@yahoo.com

उदास बादलों के उस पार

सपने तो सपने होते हैं
उस पर इस या उस का ज़ोर तो होता नहीं।
सड़क किनारे बैठ
कितनी बार
सपनों की चादर ओढ़ कर सोया रहा है वह
सपनों की एक ऐसी ही रात
आकाश में गहराइयों को नापने लगा वह
और ढूँढ़ने लगा उस घर को
जिसे पीछे छोड़ आया था
बंजर बियाबान सृष्टि के
अनंत विस्तार में
नीचे देखने पर उसे
कहीं नज़र नहीं आई पृथ्वी
उदासी के बादल घेरने लगे
सब कुछ धुँधला उठा
मन की सारी रोशनियाँ
आकाश के गहन अन्धकार
और टिमटिमाते तारों के मध्य
पता नहीं कहाँ विलुप्त हो गईं।
आख़िर रोशनी के सहारे ही तो
अपने घर को ढूँढ़ना चाहता था वह
वह घर जिसे कभी उसके पूर्वजों ने
स्थापित किया था इसी कायनात में
और आज इन्हीं गहराइयों में दीख रही हैं
मृग मरीचिकाएँ अनंत।
विस्मृति की गूँज में फँसा
काल नचाने लगता है सब कुछ को
शायद किसी के पास होगा जवाब.....
000

वह मेरे सपनें में

रोज़ मेरे सपनों में आती है वह,
किसी उदासीन दृश्य की तरह
खनखनाती हुई
अपने सुहाग चिह्नों को।
दर-ओ-दीवार को छूने की बजाय
टेबल पर पड़े
मेरे पेन को छूकर
मुस्कुराने लगती है वह।
उसकी लटें
बाहर से आती हवा में
लहरा कर
किसी अनंत
और उद्दाम कथा को
रूपायित करते हुए
मेरे चेहरे को
ढाँपने की कोशिश करती है।
उसकी आँखें
बहुत कुछ बयाँ करने के लिये
अपनी स्मित हँसी को
कब्र में से निकालती हुई
प्रतीत होती हैं।
मेरा समग्र उसको सुनने के लिए
ठिठका रह जाता है,
मेरे सपनों की फंतासी को
उद्विग्न करने की कोशिश में
वह
अपने उन्नत अंगों से
थाप देती है मुझे शनै:-शनै:
तभी आकाश के स्याह बादलों की
अमर्यादित बूँदें
भिगो जाती हैं उसके चेहरे को,
उसको पाने की
भरपूर कोशिश करता हूँ
मेरे अन्दर के जागृत शैतान की मौजूदगी में,
यकायक उसके हाथ
मेरे गालों को छूकर
कुछ सन्देश देते हैं मानों
और मैं
स्वप्न नरक से उबर कर
जीवन के आकाश की ऊँचाइयों को छूने
लगता हूँ।
000

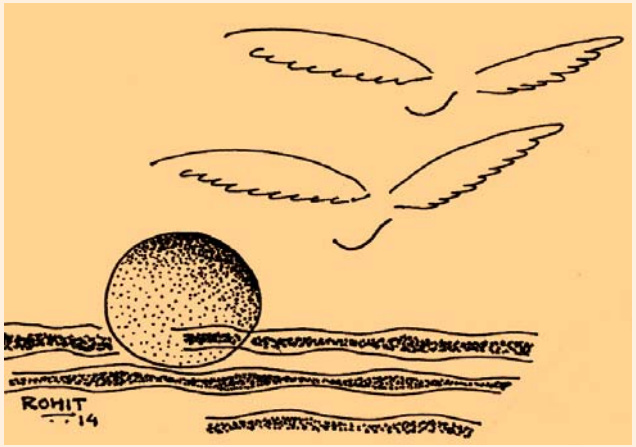

शोर पेड़ों का

आओ इन पेड़ों को करीब से देखें
कितने मासूम
मगर बहुत करते हैं शोर
जब हवा बन जाती है उनकी दोस्त
उस शोर से दोस्ती करने के लिए बच्चे
टहनियों से लटक गले मिलजुल
मासूमियत की विभिन्न धाराओं को
देने लगते हैं नई दिशा
जमीं भी नन्हीं कोपलों के सहारे
छूती हैं उनके साहस को
पेड़ मुस्कुराते हैं
रेतीले थार,
तभी तो नतमस्तक होकर
विस्तार करते हैं
ज़िन्दगी के अहसास का
इसीलिए धूमकेतुओं के
निशाने भी शायद चूक जाते हैं
जिस्म तो बासी होकर
विश्वास से परे
जमीं को सौंप देता है उसके तमाम तत्व
मगर आत्मा की खुशबू तो
लय संग
सुगन्धित महक के साथ
हमारे हाथ थामे चलती है सदा।
000

औरत

दुनिया को आँचल में समेट
सृष्टि की हलचल को
नई दिशा देती है।
जबकि नर
समाधान के इतर
प्रश्नों के जाले बुनता दिखाई देता है
जहाँ तिक्तता का अहसास होता है
इसीलिए सृष्टि-
सूरज को निहारती हुई
हर बार औरत के
आँचल को थामती है।
000

तूलिका से

दर्द की तूलिका से
उकेर रहा हूँ
ज़िन्दगी के चित्र।
थम गयी है रंगों की बरसात
कैनवास झाँकता है आँखों में
शाम की ध्वनियाँ
घुँघरुओं की खोज में
बिखर जाती है आस।
क्योंकि कैनवास पर
उकेरने हैं कुछ चित्र अभी
कल यही तो पहचान होगी
दर्द की तूलिका से उभरे
उन चित्रों की,
जिन्हें बीते हुए कल की तरह
सहेजा जायेगा,
जब वर्जनाओं के
खंडित स्वरूप के समक्ष
अनावृत हो जाएगा सब कुछ
सत्य की दहलीज़ पर।
000

31 दिसम्बर का चाँद

कृष्ण कान्त पण्ड्या

लेखक सुप्रसिद्ध फिल्म निर्देशक हैं जो पनाह तथा बेदर्दी जैसी फिल्में निर्देशित कर चुके हैं। कई टी वी धारावाहिकों का आपने निर्देशन किया है।
कृष्ण कान्त पण्ड्या
बी-2603, ऑबरॉय स्प्लेन्डर
मजास डिपो के सामने
जोगेश्वरी विकोली लिंक रोड
अंधेरी (पूर्व), मुम्बई 400060

चाँद ने आधा सफ़र तय कर लिया था,
विश्राम के लिए, बादल की ओट में
मुँह ढँक कर बैठा ही था;
के पृथ्वी पर होने वाली आतिशबाज़ी से
चौंक गया।
झट-पट बादल को धकेल कर झाँका
और चौंका !
धुएँ का ग़ुबार उठ रहा था पृथ्वी से!
कहीं वो ढँक न जाए,
इसलिए गौर से देखने लगा।
अच्छा आज 31 दिसम्बर है!
वो मायूस हो गया!

उसकी आँख से टपका आँसू,
पृथ्वी से उठे ख़ुशी के ग़ुबार से सोख
लिया।
हर वर्ष की तरह उसका रुदन नहीं रुका,
''काश मेरे यहाँ भी जीवन होता!
और मैं भी पृथ्वी की तरह इठलाता
इस बह्माण्ड में घूमता।
मैं तो भूल ही गया था कि;
विधि ने मुझे एक बाँझ औरत-सा
जीवन दिया है।
यह किसका अभिशाप लगा है मुझे
मैं जान नहीं पाया।''

मैं उसकी इस व्यथा को
शब्दों का रूप दे ही रहा था
कि; वो झपाक से मेरे बेड रूम में आ
टपका
और कहने लगा,
''तुम पहले व्यक्ति हो
जिसने मेरे दर्द को समझा है।''
मैं उसकी तरफ देखूँ, तब तक तो उसने
मेरी क़लम पर अधिकार जता लिया
और लिखने लगा...
''मेरे जनम के करोड़ों साल बाद,
आज से क़रीब सैंतालीस साल पहले
दो, सुन्दर-से, खिलौने जैसे, धरती के
लाल
मेरे पास आए थे।
और एक आस जगी थी;
कि मेरे यहाँ की मिट्टी की जाँच कर
वे कह देंगे, कि मेरे यहाँ भी जीवन की
सम्भावनाएँ हो सकती हैं;
-ऐसा कुछ कहें
इसलिए, मैंने उन्हें, अपने सीने पर
क़दम रखने के लिए,
छः गुना कम वज़न का कर दिया था।
नन्हें बालक आए हैं ना, मेरे अँगना,
जल्दी में उतरें और कहीं धड़ाम से
गिर ना जाएँ।''

-चाँद थोड़ा मुस्कुराया,
उस घटना को याद कर के
उसके आँसू सूख गए थे।
कहने लगा, ''बेचारा नील
बहुत डर रहा था, अपने नन्हें पैर रखते हुए
पर उसे क्या पता था कि
बाँझ होते हुए भी मेरे सीने में
अमृत उतर आया था -ठंडा,
मैं उसे निगलने थोड़े ही वाला था!!!
बड़ा मज़ा आया था,
जब पहली बार मेरे यहाँ
चहल-क़दमी हुई थी।
मुझे लगा था, कि; नील
वापस आएगा दवा लेकर,
जिससे मैं फल-फूल जाऊँगा;
पर.... !!! ....पर, वो दोबारा नहीं
आया!!!''

चाँद की आँखें भर आईं।
''पृथ्वी वाले रूप का प्रतीक मानते हैं मुझे;
पर मेरे कलेजे में कितना दर्द है,
कि मेरे सारे समन्दर सूख गए हैं,
इस पीड़ा की जलन से।
मैं, निरा निठल्ला;
दूर के डूँगर सुहाने-जैसा,
निरर्थक, धरती की परिक्रमा कर रहा हूँ,
इस आस में, कि मेरे इस आराधना से
वो प्रसन्न हो कर मुझे 'दूधो नहाओ
पूतो फलो' का आशीर्वाद दे दे।
मेरे यहाँ भी
वार-त्यौहार, मान-मनुहार,
जद्दो-जहद और चहल-चहल हो;
कोई ईसा, कोई राम-कृष्ण,
या कोई मोहम्मद पैदा हो;
जिनसे सार्थक
कोई इतिहास बने मेरा।''

...और एक नये जोश में भरा चाँद
फिर अस्ताचल की ओर चल पड़ा
एक नई सुबह के लिए।
****

अँधेरे का मध्य बिंदु
सिद्धहस्त जुलाहे की चादर से भी महीन

समीक्षक : मुकेश दुबे

उपन्यास: अँधेरे का मध्य बिंदु
लेखिका: वंदना गुप्ता
प्रकाशक: एपीएन पब्लिकेशन
संपर्क: 9310672443, 011-25356034
apnlanggraph@gmail.com

ए पी एन पब्लिकेशन से प्रकाशित 'अँधेरे का मध्य बिंदु' वंदना गुप्ता द्वारा लिखित पहला उपन्यास है। जब वन्दना जी ने अपनी पुस्तक का शीर्षक बतलाया था, मैं सोच रहा था कि आखिर क्या आशय है इस अँधेरे की नाप तौल और माप का ? हर वो जगह जहाँ प्रकाश नहीं तो अँधेरा होगा फिर क्या फर्क पड़ता है कि ये कितनी दूर है... लेकिन जब इस किताब को पढ़ा तब समझ सका कि सोच भी तो एक प्रकाशपुञ्ज ही है। जो समझ के परे है वो अन्धकार ही है। जब किसी अबूझ पहेली की गिरफ्त में मन छटपटाता है तो दूरी को नापी जा सकने वाली हर माप महत्त्वपूर्ण लगने लगती है। विशाल पर्वत की तलहटी से शिखर बहुत दूर प्रतीत होता है। चढ़ना शुरू कर दो तो आधी दूरी पर पहुँचने पर भी अपार हर्ष की अनुभूति होती है। क्योंकि वो धरती से शिखर की दूरी का मध्य बिंदु है। शुरू से अंत तक अनेकों बार मन घुप्प अँधेरों में भटकता है। हर बार हौंसले की रश्मियों के साथ पथिक शनै:शनै: आगे बढ़ता है और जैसे ही मध्य बिंदु आता है उत्साह उस शेष आधे भाग पर विजय प्राप्त कर लेता है। शीर्षक जितना उलझनों से भरा हुआ है, कथानक तो उससे भी कई गुना ज़्यादा चौंकाने वाला... शुद्ध कर्मकांडी सतनामी साधु से पूछना कि भोजन में आप मांसाहार लेते हैं क्या फिर भी कम दुष्कर है, किन्तु सीधे परोस देना... परिणाम गंभीर भी हो सकता है।

लेकिन जो दिया जलाने का हुनर जानते हैं वो हवाओं की परवाह कब करते हैं। वैसे भी मानव स्वभाव में बचपन से ही निषेध को करने की प्रवृत्ति होती है। जिसको करने के लिए मना किया जाता है उसे ही करने की उत्कंठा बलवती रहती है। शायद यही वजह है कि वन्दना जी ने स्वयं व समाज की सोच से असहमत विषय चुना। और सिर्फ चुना ही नहीं बल्कि बुना। वो भी सिद्धहस्त जुलाहे की चादर से भी महीन, कोमल व उससे भी चटक रंगो वाला। कहीं कोई रेशा उलझा नहीं, कोई सूत में गाँठ नहीं, शल नहीं बस एक समान बुनाई जिसे बार-बार हाथ से छूने का मन करता है।

लिव-इन रिलेशनशिप पर बुना गया ताना-बाना सिर्फ समस्या नहीं उठा रहा! किसी एक पक्ष की पैरवी भी नहीं करता नज़र आता। हर पहलू पर शंका से समाधान तक बराबर नज़र रखी है वंदना जी ने। जब कहीं ऐसा भान हुआ कि बात ऐन उस जगह तक न पहुँच सके जहाँ पहुँचनी थी तो बड़े प्यार से उसे और मुखरित कर समझाया जैसे परिपक्व गुरु शिष्य की दुविधा समझ किसी और भांति बात का संप्रेषण कर देता है।

हम जिस समाज में जन्म ले, पले बढ़े और जिसकी नियत लकीरों का उल्लंघन करना तो दूर, सोचना भी अपराध की श्रेणी में आता है, वहाँ शादी जैसी संस्था के विरुद्ध

जाकर दो विदर्मियों का एक ही घर में रहकर पति-पत्नी सा आचरण !! नारायण ! नारायण....

लेकिन रवि और शीना तो उसके भी आगे गये। न सिर्फ अविवाहित रहकर साथ रहे बल्कि विवाहितों की भांति उनकी संतान भी हुई। जबकि दोनों की पृष्ठभूमि उनके अंतर्जातीय विवाह के अनुकूल थी। सिर्फ इसलिए कि एक दूसरे पर एक दूसरे का अतिक्रमण स्वीकार्य नहीं है एक मात्र वजह मानें तो एक मोड़ ऐसा भी आया जब दोनों को अपने ऊपर नियंत्रण रखना पड़ा क्योंकि वो दैहिक ज़रूरतों से ज़्यादा ज़रूरी था। कोई फेरे, कोई मंत्र, कोई साक्षी और दबाव नहीं उस परिस्थिति में भी साथ रहने का लेकिन अलग नहीं हो सके या यह कहना ज़्यादा उचित है कि अलग होना ही नहीं चाहा। किसी प्रेमकथा में भी इतनी गहराई बिरले ही मिलेगी।

मुख्य विषय के साथ लेखिका और भी समतुल्य सरोकारों को सहेज कर चली हैं। समाज की प्रतिक्रिया व दृष्टिकोण, बहिष्कार व सभ्य समाज में व्याप्त कमियाँ भी हैं और पूरी शिद्दत से अपनी बात को कहा गया है। आदिवासी अँचल की परम्परा व प्रथा को ऐसे जोड़ा है जैसे शोध प्रबंध के डिस्कशन में रिज़ल्ट को सपोर्ट के लिए रेफरेंस से साध दिया जाता है। एड्स जैसे विषय को कथानक में टांकने की विधि तो डिज़ाइनर द्वारा कफ कॉलर या गले में खूबसूरती के लिए उपयोग किये दूसरे कपड़े को खपाने से भी प्रभावी लगी।

भावनाओं, आवेग, संवेदना, दुःख, भय, रूमानियत और रोमांस बिल्कुल किसी सुस्वादु व्यंजन की रेसिपी की तरह नपे तुले। अपने पहले ही प्रयास में वंदना जी ने अपनी पहचान कुशल उपन्यासकार के रूप में करा दी है। पुस्तक का टंकण व मुद्रण, गुणवत्ता युक्त सामग्री व मनभावन आवरण के लिए APN प्रकाशन भी बधाई के हकदार हैं।

वंदना जी को इस अद्भुत पुस्तक हेतु हृदयतल से बधाइयाँ व अनन्त शुभकामनाएँ।

****

पुस्तक वार्ता

कवि - पवन चौहान
प्रकाशक - बोधि प्रकाशन
प्रकाशन: बोधि प्रकाशन, एफ़-77, सेक्टर-9, रोड नं-11, करतारपुरा इण्डस्ट्रीयल एरिया, बाईस गोदाम, जयपुर-302006
फ़ोन: 9829018087
ई-मेल : bodhiprakashan@gmail.com
मूल्य 70 रुपये

किनारे की चट्टान
पहाड़ के निष्कलुष सौंदर्य का साक्षी

समीक्षक : अंजू शर्मा

पिछले दिनों लगातार कई मित्रों द्वारा भेजी किताबें और पत्रिकाएँ मिलीं। पवन चौहान जी की कविताएँ पिछले एक साल में कई बार पढ़ी हैं। उनका पहला संग्रह 'किनारे की चट्टान' बोधि प्रकाशन जयपुर से प्रकाशित हुआ है। इसका आकर्षक कवर कुंवर रवीन्द्र जी ने बनाया है। पवन जी मण्डी, हिमाचल प्रदेश से हैं और वहाँ अध्यापन से जुड़े हैं। किसी कवि की कविता में उसकी स्थानीयता की उपस्थिति कविता का ज़रूरी तत्व मानती हूँ मैं। पवन जी की कविताएँ भी पहाड़ के उसी निष्कलुष सौंदर्य की साक्षी हैं किन्तु प्रकृति इन कविताओं में महज सौंदर्यबोध के लिए स्थान नहीं बनाती अपितु उससे जुड़ी चिंताएँ भी यहाँ बराबर सचेत करती हैं। ये पंक्तियाँ पढ़िए-

ग्लेशियरों का डर,
बादल फटने की कंपकपाहट
दुर्गम रास्तों का जोखिम भरा लम्बा सफर
बर्फ में दफन घरों की
दफन-सी ज़िन्दगी का अहसास भी
करवा देते हैं तुम्हारे
चंद ही शब्द

ऐसी अनेक कविताएँ हैं, जो आम पहाड़ी जीवन से जुड़ी विसंगतियों से शुरू होती हैं पर खोखले जीवन मूल्यों और घटती संवेदनशीलता में विस्तार पाती है।

चिम्मु, काफल, शब्द और पहाड़, सेब का पेड़, कटारडू, छड़ोल्हू, पहाड़ का दर्द जैसी अनेक कविताएँ हैं, जो पहाड़ी संस्कृति से परिचय कराने में सक्षम हैं। वहीं रिश्तों के प्रति संजीदगी और अतीत में लौटना भी कविता में बार-बार जगह बनाते हुए कवि के संवेदनशील होने की तसदीक करता हैं और इस संग्रह को पठनीय बनाता है। इस पहले संग्रह के लिए पवन जी को बधाई और उज्ज्वल भविष्य के लिए अशेष शुभकामनाएँ।

****

हमें साँच ने मारा
महेन्द्र नेह ने आज के दौर में स्वर-प्रवाह की गंगा बहाई है

समीक्षक : सौरभ पाण्डेय

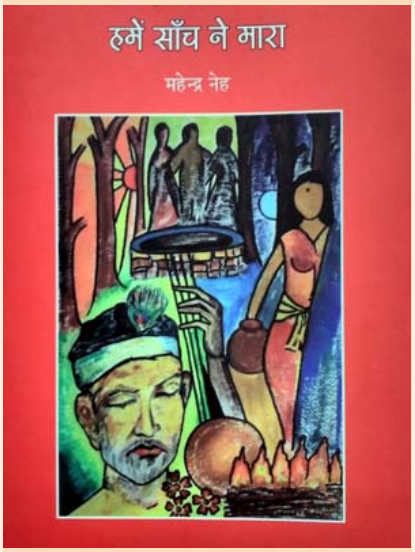

संग्रह: हमें साँच ने मारा
कवि: महेन्द्र नेह
संस्करण: पेपरबैक
मूल्य: रु. 50 / (पचास रुपये)
प्रकाशन: बोधि प्रकाशन, एफ़-77, सेक्टर-9, रोड नं-11, करतारपुरा इण्डस्ट्रीयल एरिया, बाईस गोदाम, जयपुर-302006
फ़ोन: 9829018087
ई-मेल :
bodhiprakashan@gmail.com

भाषाओं के स्वरूप में कालबद्ध होता परिवर्तन कई काव्य-विधाओं के जनमने और प्रभावी होने का साक्षी रहा है । इस क्रम में स्मरण रखना आवश्यक है कि 'अप्रभंश' या 'अवहट्ट' भाषा आधुनिक उत्तर-मध्य भारत की लगभग सभी भाषाओं की जननी रही है । भाषायी निष्ठा के सापेक्ष अनगढ़ प्रतीत होती इस भाषा ने कई छन्द ऐसे दिये जो वैदिक भाषा-काल की पैदाइश नही थे । तो इसी भाषा-काल के दौरान कई छन्दों ने अपने प्रारूप भी बदले । कुछ मिश्र छन्दों का भी सफल प्रयोग हुआ, जिनमें प्रस्तुत हुई रचनाओं की पंक्तियों में एक से अधिक छन्द-विधाओं का समावेश हुआ । वैदिक छन्दों के अलावा देसी छन्दों का सफल प्रयोग भारतीय काव्य चेतना के लिए विशिष्ट साधन मुहैया कराता रहा है । इनकी मौज़ूदग़ी से गीति-काव्य सदा धनी हुआ है । ऐसा ही सफल प्रयोग हुआ 'पद' विधा के तौर पर । मध्यकालीन दौर में सामंतवादी तौर-तरीका अपनी उठान पर था । साहित्य में भक्ति-भावनाओं से पगी रचनाओं का बाहुल्य प्रभावी था । यही आमजन के लिए सांत्वना थीं । रचना-अभिव्यक्ति के लिए 'पद' शैली का मुखर प्रयोग होता था । आजभी तुलसी के पद, मीरा के पद, सूरदास के पद, रैदास के पद, नन्ददास के पद, कृष्णदास के पद आदि वर्तमान काल में गेय रचनाओं के सशक्त उदाहरण हैं । लेकिन जिस कवि ने 'पद' विधा का उपयोग समाज की जागरुकता और चेतना को जगाने के लिए किया और सामाजिक विसंगतियों पर न केवल व्यंग्य के ताने कसे बल्कि लताड़ भी लगायी, वे कबीर थे । उनके दोहे हों या पद समाज में फैले अनगढ़पन के विरुद्ध समान रूप से निरंकुश हैं । परशुराम चतुर्वेदी ने अपने आलेख 'कबीर साहब की पदावली' में कहा है - 'कबीर साहब के पद, उनकी रचनाओं में, कदाचित सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । इन में गूढ़ से गूढ़ सिद्धान्तों का विशद विवेचन है और यह, अपने भाव-गांभीर्य एवं रहस्यमयता के कारण उनके निर्गुणगान के नाम से भी प्रचलित हैं ।' यहाँ एक बात अवश्य जानने योग्य है, कि साहित्यकर्म के तौर पर पदों का खुल कर प्रयोग नाथपंथियों ने किया था, जो अपनी अभिव्यक्तियों को उपदेशात्मक अंदाज़ में 'गाते' थे । तात्पर्य यह है कि 'पद' सधुक्कड़ी जीवन जीने वालों के गीत थे । सधुक्कड़ी

जीवन-शैली को अपनाने वाले अधिकतर ब्राह्मणेतर जातियों से हुआ करते थे । इसी कारण, आगे भी 'पद' अभिजात्य वर्ग का छन्द कभी नहीं था । लेकिन आम जन-मानस तथा लोक-जीवन में यह अत्यंत प्रसिद्ध था ।

पारम्परिक विधान के अनुसार 'पद' मात्रिक छन्द है । जिसका विकास, माना जाता है, कि लोकगीतों की परंपरा से हुआ । पदों का कोई निश्चित विधान नहीं है । किन्तु, यह भी सही है कि पद गीति-काव्य के समर्थ वाहक रहे हैं । वस्तुत: गेय रचनाओं को ही 'पद' कहने की परम्परा रही है । इसी कारण, पदों के साथ कोई न कोई राग निर्दिष्ट हुआ करता था । अर्थात् विशेष पद को को विशिष्ट राग में ही गाने की परिपाटी हुआ करती थी । जबकि ऐसा होना शास्त्र सम्मत भी रहा हो, ऐसा पद का व्यवहार सूचित नहीं करता । शैल्पिक दृष्टि से प्रत्येक पद में आयी हुई कुल पंक्तियों की संख्या कम से कम तीन और अधिक से अधिक अठारह तक होती हैं । कुल पंक्तियों के वर्णों की मात्रा बराबर हो, ऐसा आवश्यक नहीं हुआ करता था । यही कारण है कि तत्कालीन पद रचनाओं की पंक्तियों में हम बहुधा एक ही विशिष्ट छन्द नहीं पाते । पद की पंक्तियाँ में अधिकांशत: सार छन्द (16-12 की यति, पदान्त समकल), चौपई छन्द (16-15 क यति, पदान्त गुरु-लघु), चौपाई छन्द (16-16 की यति, चरणान्त एवं पदान्त समकल), सरसी छन्द (16-11 की यति, पदान्त गुरु-लघु), रूपमाला छन्द (14-12 की यति, पदान्त गुरु-लघु), ताटंक छन्द (16-14 की यति, पदान्त लगातार तीन गुरु), कुकुभ (16-14 की यति, पदान्त लगातार दो गुरु), लावणी छन्द (16-14 की यति, पदान्त समकल), सवैया, या फिर एकाध मात्रिक वृत का प्रयोग हुआ करता था । कई बार, एक ही पद क पंक्तियों में दो अथवा दो से अधिक छन्द भी देखने में आते हैं । कई पदों में रोला (11-13 की यति, पदान्त समकल), दोहा (13-11 की यति, पदान्त गुरु-लघु) आदि छन्दों का प्रयोग भी देखने में आता है । पारम्परिक विधान या परिपाटी के अनुसार पद की पहली पंक्ति 'टेक' हुआ करती थी, जिसे आगे की हर पंक्ति के बाद तुक मिलाते हुए गाया जाता था । 'टेक' के शब्दों की कुल मात्रा अन्य पंक्तियों की कुल मात्राओं की अपेक्षा आधी के आस-पास हुआ करती है ।

छन्दों में लय या गेयता उसकी आत्मा हुआ करती है । परन्तु, काव्य-विकास के क्रम में गेयता को अभिव्यक्ति के विरुद्ध किसी बन्धन की तरह देखा जाने लगा । भले ही यह एक लचर अवधारणा थी। या, ऐसी सोच वस्तुत: असफल हो गए गीतकारों का सतत अभ्यास से मुँह चुराने के कारण थी । लेकिन इसे इतने पुरज़ोर तरीके से प्रचारित किया गया कि पद्य रचनाओं से गीत या इसके अन्य सभी प्रकार एक तरह से हाशिये पर फेंक दिये गए । इसी कारण, गेय रचनाओं की यह अभिनव विधा आगे लुप्तप्राय होने के कगार पर आ गयी । आज हालत यह है, कि गीतकारों द्वारा यह विधा नहीं के बराबर प्रयुक्त होती है । किन्तु, यह भी उतना ही सच है, कि कोई समाज परम्परओं को नकार कर नहीं बल्कि उनकी पड़ताल कर ही अपने वर्तमान और भविष्य को साध सकता है । हमारे बीच के कवि महेन्द्र नेह ने पदों का मुग्धकारी प्रयोग किया है । उन्होंने पदों में जिस तरह से वर्तमान की विविध विसंगतियों तथा समस्याओं को पिरोया है, वह उनकी समर्थ काव्य-समझ का परिचायक है । पद विधान में वस्तुत: संवाद शैली में कथ्य को अभिव्यक्ति दी जाती है । इसी कारण पदों में कथ्य को सहज देसज एवं उदार तद्भव शब्दों के अभिधात्मक स्वरूप के साथ बाँधा जाता है। महेन्द्र नेह ने इसके भी आगे अपनी प्रस्तुतियों में लोक-मुहावरों का प्रयोग कर व्यंग्य और चुटीलेपन से काव्य-चमत्कार पैदा किया है। कवि ने इस शाब्दिक शस्त्र को लोक-भाषा और भाषा-परम्पराओं के सचेत अभ्यास से बहुत ही धारदार बना लिया है ।

बोधि प्रकाशन, जयपुर (राजस्थान) ने महेन्द्र नेह का पद-संग्रह 'हमें साँच ने मारा' प्रकाशित किया है । एक कवि के तौर पर महेन्द्र नेह स्वयं को कबीर का अनुयायी मानते हैं । उन्होंने अपनी जागरुक समझ का इस पद-संग्रह के माध्यम से खुल कर प्रयोग किया है । समाज से आँख में आँख मिला कर संवाद बनाना हँसी-ठट्ठा नहीं है । लचर हो चुकी परिपाटियों पर चोट करना कई बार 'आ बैल मुझे मार' की स्थिति बना देता है । क्योंकि समाज अक्सर कई अर्थों में यथास्थिति को बनाये रखना चाहता है । समाज कहीं का हो इसकी यही प्रवृति रही है । इस संग्रह की भूमिका में डॉ. जीवन सिंह कहते हैं - 'कबीर जानते थे कि परम्परा से प्रभावी ज्ञान में कितना असत्य मिला हुआ है ।' महेन्द्र नेह भी इस तथ्य को बख़ूबी समझते हैं - 'साधो, हम कबीर के चेले / हाँ में हाँ कर नहीं सके हम, सितम हजारों झेले । परम्पराओं और परिपाटियों के नाम पर कई तरह के सड़े बर्तावों का निर्वहन करता हुआ यह समाज उन कारकों पर कुछ भी सुनना नहीं चाहता जिनके कारण विसंगतियाँ समाज में पैठ बना पाती हैं । हर तरह के ग़लत को ग़लत कहने निर्पेक्ष साहस ही किसी कवि के लिए कबीर होने का कारण बनाता है । यदि कवि पक्षधारी हो कर प्रहार करने लगे तो उसका असफल हो जाना तय है। इसी कारण कहते हैं, कि यदि इतिहास की सम्यक जानकारी न हो तो व्यंग्य की भाषा भी लचर हो जाती है । या, कवि पक्षपाती हो कर परपीड़क हो जाता है । यहाँ महेन्द्र नेह अपने पद-संग्रह में ऐसे किसी दोष से बचे दिखते हैं । उनकी भाषा और उनके इंगित स्पष्ट हैं । क्योंकि इस तरह के प्रयासों में अभिव्यंजनाओं को प्रभावी बनाने का कोई बलात् प्रयास सचेत सुधी निग़ाहों से सहज ही पकड़ में आ जाता है और उसका बनावटी दिखता है । डॉ. जीवन सिंह कहते भी हैं - 'पद का एक ख़ास संदर्भ यहाँ है, जो एक ओर व्यंग्य करने के लिए बहुत मौजूं है, (तो) दूसरी तरफ़ अपनी बंधन मुक्त मस्ती और फक्कड़पन के लिए'

कबीर के समय से आज का समाज यदि बदला हुआ दिखता है तो वह उसके भौतिक स्वरूप में हुआ परिवर्तन मात्र है । समाज की कई बदकारी सच्चाइयाँ अपने स्वरूप बदल कर और क्लिष्टतर हो गई हैं जिन पर चोट कर उन्हें उद्घाटित करने की

आज अधिक आवश्यकता है । लोकतंत्रात्मक व्यवस्था का अत्यंत विकृत स्वरूप लगातार आकार लेता जा रहा है । सत्ता से शासक जाति भले चली गयी है, लेकिन वही जातिगत प्रवृति आज शासक-वर्ग का रूप लेकर फिर से लोक के सिर पर आसीन है - जन-विरोध को पुलिस-फ़ौज के बल पर ये संहारे / इनसे मुक्ति मिलेगी कैसे आओ सोच विचारें ''आओ सोच विचारें' जैसे भाव को शाब्दिक करते पद्यांश ही कवि का अदम्य बल हैं और तमाम विसंगतियों से लड़ने की भरपूर ताक़त । चाहे तंत्र का शासक हो या व्यवस्था एवं कार्यालय का अधिकारी, मूल प्रवृत्ति आज तक शोषक की ही हुआ करती है। तभी कवि महेन्द्र की पंक्तियाँ मुखर हो उठती हैं - सच के घर में घुसा सोच कर भागेगा अँधियारा / किन्तु यहाँ भी दिग्गज बैठे, सबने पाँव पसारा / ... / सदा गर्म रहता हमपर शासन सत्ता का पारा / फिर भी नीकी लागे हमको, कड़वे सच का कारा।

महेन्द्र नेह की रचनाओं के शब्द 'पद विधा' की आवश्यक भाषा के शब्दों की तरह ही बर्ताव करते हैं । देशज, तद्भव या तत्सम आदि जैसे वर्गीकरण या पचड़े में न पड़ कर कवि ने बोलचाल की भाषा में समाहित एवं प्रचलित हो चुके शब्दों का पूरी धाक के साथ प्रयोग किया है । सच बोला जब नौकरिया में, बाहर गेट निकारा / घर से जब सड़कों पर आया, कूट-कूट अधमारा । या फिर, साधो यह क्या ग्लोबल-ग्लोबल / चमक-दमक बस ऊपर दिखती, अन्दर से है खोकल / सारी जनता मूक-बधिर है, सिर्फ़ मीडिया वोकल / ... / चन्द अमीरों के कब्ज़े में कोठी, बंगले, होटल / बाकी जनता फुटपाथों पर, बाकी जनता लोकल ।

ऐसे शब्दों का इस तरह से हुए प्रयोग का विशेष अर्थ है । 'पदों' में अभिजात्य मनस के भाव शाब्दिक नहीं होते । अपितु, आमजन की त्रासदियों और सांत्वनाओं को अभिव्यक्त करती भाषा शब्दों के विचार से सर्वसमाही हुआ करती हैं । तभी पद के कवियों की भाषा मानवीय भावनाओं को उसकी नैसर्गिकता के साथ अभिव्यक्त कर पाती है । कवि महेन्द्र नेह की भाषा पद-संग्रह की प्रस्तुतियों में तेज़ कतरनी की व्यवहार करती दिखती है, जो व्यवहार, बर्ताव और व्यवस्था के सियाह कोने को देख कर और प्रखर हो उठती है । भाषा में जो भदेस खुरदुरापन है वह उस तबके की भाषा का खुरदुरापन है, जो जीवन को पढ़ाई के नाम पर रट्टा मार कर नहीं, अनुभवों से पगकर तौलने का हामी है । पद-विधा का स्वर ऐसे ही शब्दों के माध्यम से सीधा संवाद बनाता है । कवि के शब्दों से भावों की आत्मीयता और अभावों की तिलमिलाहट संप्रेषित होती है । यहाँ शाब्दिक पाण्डित्य वस्तुतः उथला प्रदर्शन ही होगा । कवि विडंबनाओं और विसंगतियों के लिए किसी ख़ास वर्ग या समूह को दोषी नहीं मानता । लेकिन वह छोड़ता भी किसी को नहीं ।

पद-संग्रह की पहली प्रस्तुति ही मथुरावासियों पर कटाक्ष करती है ! ज्ञातव्य है, महेन्द्र नेह का पैतृक निवास मथुरा ही है - साधो, श्यामघाट के वासी / ... / माँ यमुना को किया प्रदूषित, निर्मल जल को बासी / इतने पर भी अविकल-उज्ज्वल, कौन हमारी माँ सी ? ऐसा भी नहीं कि, पद-संग्रह का कथ्य मात्र उपालम्भ और शिकायती हो कर रह गया है । ऐसा कोई आचरण किसी को सार्थक कवि बनाता भी नहीं । समाज की विसंगतियों पर उँगली उठाने वालों की बात समाज तभी सुनता है, जब उसके आचरण और व्यवहार में समदर्शिता हो, मानव कल्याण के लिए आश्वस्तिकारी करुणा हो । कबीर के कहे की नकल करने में और कबीर की प्रवृति को जीने में यही सबसे महत्वपूर्ण अन्तर है । यदि कवि साहित्य के कैनवास पर आश्वस्ति और समाधान के स्वर तानता न दिखे तो समाज के लिए वह कभी प्रासंगिक नहीं हो सकता । इस पद-संग्रह का कवि अपने दायित्व के प्रति न केवल सचेत है बल्कि प्रभावी भी है । कवि की उदारता समस्याओं के समाधान सुझाती है - साधो, आग लगी बस्ती में / आग बुझाने वाले लेकिन ग़ैरों की कश्ती में / ... / आग बुझाने के साधन सब, स्वयं जुटाने होंगे / एक-दूसरे की खातिर निज स्वार्थ लुटाने होंगे / नहीं लगी है आग स्वयं यह सत्य बूझना होगा / किसने आग लगाई इसका मर्म ढूँढ़ना होगा / आग बुझा कर ही सो जायें, काम अधूरा होगा / बस्ती नई बसायेंगे, व्रत तब ही पूरा होगा ।

इन पंक्तियों में कवि ने आपसी वैमनस्य के प्रतिकार की बात की है और तार्किक समाधान प्रस्तुत किये हैं ।

वस्तुतः समाज कोई हो, किसी साहित्यकार से व्यापक हो गयी लाचारी और दुर्दशा पर रोना-धोना की चाहना नहीं करता । बल्कि, बेहतरी के लिए उपाय की अपेक्षा करता है ।

इन पदों के कवि का लक्ष्य 'पद श्रोताओं' की परम्परा के अनुसार समाज का वह तबका है जो प्रगति के दौर में स्वयं को हाशिये पर पाता है । मजदूर और कामग़ार वर्ग की दशा पर लिखने वालों की कभी कमी नहीं रही है । लेकिन सस्वर पाठ करते हुए इस तबके से तारतम्य बैठा लेने वालों का जैसा टोंटा ही पड़ गया है । यह किसी संवेदनशील मानस को उद्वेलित कर देता है । पिछले चार-साढ़े चार दशकों में कविता हृदय-प्रसूता न रहकर बुद्धि-विलास की चीज़ हो गयी है । कामग़ारों, कृषकों, मज़दूरों की बात करती हुई कविता उनके समाज से दूर जा बैठी है या बैठा दी गई है। इसका ख़ामियाजा समाज के इसी वर्ग को उठाना पड़ा है। इस वर्ग का स्वर अवरुद्ध हो गया है। अपनी धमनियों में गीति-काव्य को बहता हुआ महसूस करने वाले वर्ग को आज की कविताओं ने गूँगा बना दिया गया है । महेन्द्र नेह ने अपने पदों के माध्यम से स्वर-प्रवाह की गंगा बहायी है जो सैद्धांतिक सुख-दुख के ही नहीं, भोगे हुए यथार्थ के पहलुओं को भी साझा करती है । बानग़ी के तौर पर - साधो, हम मंडी मज़दूर / हम रहते श्रम से, वे कहते दारू में हैं चूर / ... / शिक्षा देते पण्डित-काज़ी 'त्याग करो भरपूर' / कहते अगले जनम मिलेंगी तुम्हें स्वर्ग में हूर ! या, साधो, मनवा हुआ लुहार / भट्टी में भभका दावानल सुर्ख़ हुए अंगार / दमका लौह, खिला हो जैसे जंगल में कचनार / ... / हम हैं गति के आराधक हम उन्नति के आधार / हम से चाँद-सितारे हम से बादल राग मल्हार /

कालकूट विष पीकर हमने मरण वरा सौ बार / मृत्युंजय हम, हमसे जीवित यह गतिमय संसार ।

दलितों और पीड़ितों के जिये की भाषा में वह प्रांजल कसावट कहाँ जो शास्त्रीय ढ़ंग से गढ़े हुए साहित्य में हुआ करती है ? कवि जब शोषितों के भोगे हुए को अभिव्यक्त करता है तो उसकी ज़ुबान की शालीनता तनिक बहक जाती है – साधो, हम समाज के कचरे / थूका, हगा जिन्होंने हम पर उनके ही पग पसरे / मैला साफ करें दुनिया का धँस कीचड़ में गहरे / फिर भी गाली पड़े हज़ारों नीच जात हम ठहरे / ... / नकली लोकतंत्र के भी हम देख चुके अपरस रे / नहीं सहेंगे कुटिल नीति ये जाति धर्म के पहरे ।

आज आमजन की विवशता का रोना मानो फैशन हो गया है । लेकिन आमजन की दशा के प्रति असंवेदनशीलता कितनी दुखदायी है, इसे इन पंक्तियों के माध्यम से समझना उचित होगा – साधो, सुरसा सी महँगाई / गुमसुम से बैठे हैं घर में चूल्हे, तवा, कढ़ाई / ... / रात-दिना हम खटते फिर भी घर से भूख न जाई / आम-आदमी कह कर हँसते हम पर लोग-लुगाई / इसका मर्म समझना होगा क्यों है इतनी खाई / क्यों है मनुज-मनुज में अंतर क्यों किस्मत हरजाई ।

कवि की नज़र मज़दूर-किसान के बीच आज आम हो चले दर्दनाक व्यवहार पर भी बराबर पड़ती है । वह चीत्कार कर उठता है – रे साधो, आत्मघात मत करना / चाहे एक जनम के अन्दर सौ-सौ बिरियाँ मरना / छनना, बिनना, कुटना, पिसना, सुर्ख़ अगति में तपना । कवि यहीं नहीं रुकता, बल्कि, आगे की पंक्तियों में कवि की भाषा नेताओं के खोखले दिलासों पर खिल्लियाँ उड़ाता है – कितना भी जल्लाद समय हो, निश्चित इसे बदलना / 'भागो मत दुनिया को बदलो', राहुल जी का कहना । साहित्य में ऐसे उदाहरण पहले से मौज़ूद हैं, जहाँ व्यक्तिवाची संज्ञाओं का प्रयोग अभिव्यक्तियों का हिस्सा रही हैं । वस्तुतः ऐसे प्रयोग रचनाओं की सपाटबयानी नहीं, बल्कि आम-जीवन को प्रभावित करने वाले कारकों के बकवाद के विरुद्ध रचनात्मक प्रतिकार को दर्शाते हैं ।

नैतिकता में आया व्यापक ह्रास किसी संवेदनशील कवि के लिए उसकी राह को और कठिन कर रहा है । सचेत कवि को बाहर से अधिक अन्दर, यानी, घर के भीतर, बड़ी लड़ाई लड़नी पड़ रही है । आमजन किस पर विश्वास करे ? ग्रामीण देश का जन आध्यात्म को समझता हुआ भी कर्मकाण्डों से आबद्ध है । समस्याओं की जड़ में आजके ढोंगी बाबाओं को पा कर वह अधिक विमूढ़ है । कवि का स्वर सचेत करता हुआ गा उठता है – साधो, ये कैसे बाबा / ... / परब्रह्म होने का खुद ही करते हैं दाबा / कुर्सी पाने को सत्ता पर बोल रहे हैं धाबा / छापे तिलक लगाय कपट-मुनि दिन भर गरियाबा / ठग की माया दुनिया समझे फिर भी फँस जाबा !

महेन्द्र नेह के इस पद-संग्रह की विशेषता कही जाय तो कवि की उद्घोषणा में अदम्य साहस तथा उसकी पंक्तियों में पगी हुई सकारात्मकता ही होगी । कवि विसंगतिओं को गिनाता हुआ भी किसी तौर पर न तो विचलित होता है, न पाठक-श्रोताओं को कही हताश होने देता है । जबकि वह जितना आमजन की कठिनाइयों को साझा करता है, उतना ही वैश्विक घटनाओं पर मठाधीशी खेल रहे राष्ट्रों की चाल पर लानत भेजता है – रोना-धोना छोड़ गीत नव-संघर्षों के गाओ / नया अलाव जलाओ मिलकर मौसम को गरमाओ !

आज के दौर में विस्मरण की सीमा पर पड़ी पद्य विधा 'पद' में रचित प्रस्तुतियाँ सुखद आश्चर्य हैं । कवि महेन्द्र नेह का कार्य साहित्यिक तो है ही, उससे आगे यह एक साहसिक सामाजिक प्रयास है, जहाँ दलित और कामग़ार समाज अपना स्वर वापस पाता हुआ महसूस कर सकता है । साहित्य में कभी गीति-काव्य का अन्यतम हिस्सा रही इस आमजन की विधा को पूरे दमखम के साथ पाठकों के सामने लाने के लिए कवि महेन्द्र नेह भूरि-भूरि प्रशंसा के पात्र तो हैं ही, कविकर्म में रत अभ्यासियों के लिए अनुकरणीय भी हैं ।

****

पुस्तकें मिलीं

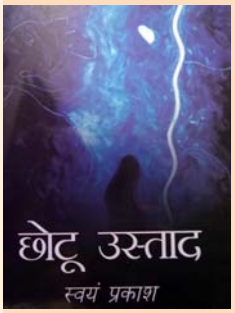

छोटू उस्ताद
(कहानी संग्रह)
लेखक
स्वयं प्रकाश
प्रकाशक
किताबघर प्रकाशन

तुम्हें बदलना ही होगा
(उपन्यास)
लेखक
सुशीला टाकभौरे
प्रकाशक
सामयिक प्रकाशन

किसी किसी पे ग़ज़ल मेहरबान होती है
(ग़ज़ल संग्रह)
लेखक
अशोक मिज़ाज
प्रकाशक
वाणी प्रकाशन

नौ बिन्दुओं का खेल
(कहानी संग्रह)
लेखक
संतोष चौबे
प्रकाशक
पहले पहल

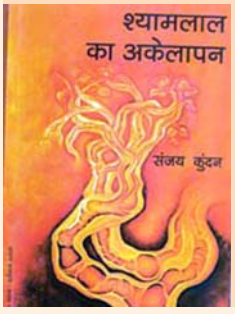

श्यामलाल का अकेलापन
(कहानी संग्रह)
लेखक
संजय कुंदन
प्रकाशक
किताबघर प्रकाशन

101 किताबें ग़ज़लों की...
साधुवाद इस साहस के लिये

समीक्षक : आशीष अन्चिहार

पुस्तक : 101 किताबें ग़ज़लों की...
लेखक : नीरज गोस्वामी
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन
सम्राट कॉम्प्लैक्स सीहोर मप्र
प्रथम संस्करण : 2016
संस्करण : 2016
मूल्य : 150 रुपये
पृष्ठ : 408

क्या किताबों के लिये भी कोई ऐसा कम्बो पैक है जो सारे या चुने हुए विकल्पों से परिचय करा दे। यहाँ परिचय को परिचय के अर्थ में लें। यह 'घड़ी' सर्फ-साबुन के विज्ञापन "पहले इस्तेमाल करें फिर विश्वास करें" वाले परिचय की हम बात नहीं कर रहे हैं। हम तो उस परिचय की बात कर रहे हैं जो पुराने जमाने मे वर-वधु को दूर से ही दिखा कर परिचय करवाया जाता था। और शादी के साल दो साल बाद गुण-अवगुण सामने आते थे ।

तो जनाब अब मैं यहाँ ये नहीं कहूँगा कि इस सवाल के उत्तर बहुत सारे विकल्प आयेंगे बल्कि मैं यहाँ यह कहूँगा कि उँगलियों पर गिनने लायक जो विकल्प आपके सामने आयेंगे उनमें नीरज गोस्वामी जी की ही "101 किताबें ग़ज़लों की..." सबसे पहले आयेगा। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें आपको 101 विकल्पों से परिचय करवाया जायेगा। विकल्प भी ऐसे-ऐसे कि आप वाह कह उठेगें। और यह वाह साधारण वाह की तरह नहीं होगा। याद कीजिये फिल्म "नदिया के पार" का वह दृष्य जब चंदन और गुंजा की दूसरी मुलाकात होती है और गुंजा अपने बापू की हिदायत के मुताबिक चंदन का हाथ जोड़ कर स्वागत करती है और चंदन के मुँह से निकल पड़ता है "अरे वाह.."। मैं जानता हूँ कि आपका वाह भी ठीक चंदन के वाह की तरह होगा ।

अब चलें कुछ बातें इस किताब के बारे में- साथ ही साथ जब आप अपने सुविधानुसार इस किताब में दिये किसी विकल्प के बारें मे पढ़ लेगें तो निश्चित तौर पर उसकी शाइरी के मे बारें में जान लेगें। इस किताब के माध्यम से राम सिनेही यायावर, कुँअर बैचेन, कुमार विनोद, राम कृष्ण पांडेय आमिल, आलम खुर्शीद, आर.पी घायल, गणेश बिहारी तर्ज, प्रियदर्शी ठाकुर ख़्याल, सलीम खाँ फरीद आदि को पढ़ना सुखद है। वैसे इस किताब की दूसरी विशेषता है किताब में अतिरिक्त भूमिका का न होना। भूमिका किताब का परिचय देते समय अपने आप चली आती है। तीसरी जो सबसे बड़ी विशेषता है वह है, नीरज जी ने कहीं भी यह नहीं कहा है, कि यह आलचोना या समीक्षा है। इसके उलट उन्होंने कई जगह कहा कि यह आलोचना या समीक्षा नहीं है। आज के दौर में जब समाचार पत्रों की कृपा से दो लाइन की पुस्तक परिचय लिखने वाले भी अपने को आलोचक कहते हों उस समय "पुस्तक परिचय" को "पुस्तक परिचय" ही कहना साहस का काम है। और यह साहस कुछ वैसा ही है कि कोई तपस्वी तप भंग करने आयी अप्सरा की तरफ ध्यान ही न दें। साधुवाद इस साहस के लिये।

****

'अकाल में उत्सव' यानी आम किसान की एक दु:ख भरी दास्तान

समीक्षक : पवन कुमार

पुस्तक : अकाल में उत्सव
लेखक : पंकज सुबीर
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स सीहोर मप्र
प्रथम संस्करण : 2016
मूल्य : 150 रुपये
पृष्ठ : 224

पंकज सुबीर हमारे समय के उन विशिष्ट उपन्यासकारों में है जिनके पास 'कन्टेन्ट' तो है ही उसे अभिव्यक्त करने की असीम सामर्थ्य भी है। किस्सा गोई की अद्‌भुत ताकत उनके पास है। 'अकाल में उत्सव' पंकज सुबीर का हाल में प्रकाशित उपन्यास है, जिसकी चर्चा हम यहाँ कर रहे हैं। पंकज सुबीर ने अपने पहले ही उपन्यास 'ये वो सहर नहीं' (वर्ष 2009) से जो उम्मीदें बोई थीं वे 'अकाल में उत्सव' तक आते-आते फलीभूत होती दिख रही हैं। नौजवान लेखक पंकज सुबीर इन अर्थों में विशिष्ट उपन्यासकार है कि वे अपने लेखन में किसी विषय विशेष को पकड़ते हैं और उस विषय को धुरी में रखकर अपने पात्रों के माध्यम से कथ्य का और विचारों का जितना बड़ा घेरा खींच सकते हैं, खींचने की कोशिश करते हैं। उनकी सबसे बड़ी ताकत यह है कि वे विषयवस्तु, पात्रों और भाषा का चयन बड़ी संजीदगी से करते हैं और उसमें इतिहास और मनोविज्ञान का तड़का बड़ी खूबसूरती से लगाते हैं।

वे अपने कथ्य को भाषा के हथियार से और भी मारक बना देते हैं। संभवत: इसीलिए उनके पात्र लोक भाषा का प्रयोग करते हैं, आवश्यकता पड़ने पर अंग्रेज़ी भी बोल लेते हैं और वो अंग्रेज़ी जो आज की आम फहम जुबान है। तभी तो 'अकाल में उत्सव' के ग्रामीण पात्र जहाँ इन्दौर-भोपाल-सिहोर जनपदों के आस-पास के क्षेत्र में बोले जाने वाली अपभ्रंश 'मालवी' भाषा में बातचीत करते हैं, वहीं कलेक्टर और ए.डी.एम. जैसे इलीट क्लास केरेक्टर हिन्दी मिश्रित अंग्रेज़ी में बोलते नज़र आते हैं। 'अकाल में उत्सव' में भाषा के इस बेहतरीन प्रयोग के साथ-साथ पंकज सुबीर ने किसानों और शहरी पात्रों की मानसिक दशा और उनके मन में चल रहे द्वंद्वों-भावों को अभिव्यक्ति देने में जो चमत्कार उत्पन्न किया है वह सराहनीय है।

बात आगे बढ़ाते हैं और चर्चा करते हैं उपन्यास 'अकाल में उत्सव' की विषय वस्तु की। उपन्यास ग्रामीण परिवेश और शहरी जीवन की झांकी को एक साथ पेश करते हुए आगे बढ़ता है। अर्थात् एक ही समय में दो कहानियों का मंचन एक साथ इस उपन्यास में होता दिखता है। एक ओर मुख्यमंत्री के निर्वाचन क्षेत्र के एक गाँव 'सूखा पानी' का एक आम किसान 'रामप्रसाद' इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है जिसकी आँखों में आने वाली फसल की उम्मीदें जवान हैं तो दूसरी तरफ सरकारी अमले का मुखिया श्रीराम परिहार आई.ए.एस. नाम का एक पात्र है जो शहर का कलेक्टर है, जिसके इर्द-गिर्द कुछ अधिकारी-समाजसेवी -नेता-पत्रकार टाइप लोग हैं जो इसी दौरान शहर में 'नगर उत्सव' के आयोजन को लेकर सक्रिय हैं। जहाँ रामप्रसाद की उम्मीदें परिपक्व होने से पहले ही बेमौसम बरसात की वजह से उजाड़ हो जाती हैं वहीं दूसरी ओर 'नगर उत्सव' का आयोजन पूरी ठसक के साथ किया जाता है। रामप्रसाद के पारिवारिक जीवन में उसकी पत्नी, बच्चे, भाई, बहिनें, बहनोई इत्यादि हैं, जिनकी परिधि में वह केन्द्रीय पात्र के रूप में उभरता है। दूसरी ओर, जैसा कि अवगत हैं कि श्रीराम परिहार और उसके इर्द-गिर्द कुछ अधिकारी-समाजसेवी -नेता-पत्रकार टाइप लोग हैं जो 'नगर उत्सव' के आयोजन को लेकर अपना उल्लू सीधा करने में लगे हुए हैं। इस दुनिया की अपनी ही सोच-भाषा-दर्शन-जीवन शैली है, जिसमें वे जीते हैं। फरवरी-मार्च का महीना चल रहा है।

बजट लेप्स न हो जाए इसलिए सरकारी व्यय पर 'नगर उत्सव' का मनाया जाना और इसी दौरान ओलावृष्टि से किसान रामप्रसाद की न केवल फसल बल्कि जीवन का करुणांत इस उपन्यास का सार है। यद्यपि पाठक को शुरुआती कुछ पृष्ठों को पढ़ने के बाद ही पूरी कथा और कमोबेश कथा के अंत का अनुमान लग जाता है किन्तु पात्रों की भाषा-संवाद और उनकी मनोदशा पाठकों को इस उपन्यास से अंत तक जुड़े रखने के लिए बाध्य करती है। किसी उपन्यासकार के लिए भला इससे बड़ी सफलता और क्या हो सकती है? दिलचस्प बात ये है कि नितान्त अलग सी लगने वाली इन दोनों दुनियाओं का एक सम्मिलन स्थल भी है जहाँ इन दो दुनियाओं के मुख्य पात्र अनायास रूप से मिलते हैं। अर्थात् उपन्यास में दो-तीन बार ऐसे अवसर आते हैं जब किसान रामप्रसाद, कलेक्टर श्रीराम परिहार से अनायास मिलता है। तीनों बार इन दोनों पात्रों के बीच कोई खास वार्तालाप तो नहीं होता लेकिन तीनों बार ही ये मुलाकातें उपन्यास की कथा वस्तु को बहुत ही दिलचस्प तरीके से विस्तार प्रदान करती हैं।

उपन्यास में ग्रामीण जीवन विशेषतया किसानों की ज़िंदगी पर बहुत करीने से रोशनी डाली गयी है। किसान की सारी आर्थिक गतिविधियाँ कैसे उसकी छोटी जोत की फसल के चारों ओर केन्द्रित रहती हैं और किन-किन उम्मीदों के सहारे वो अपने आपको जीवित रखता है, यह इस उपन्यास का कथानक है। पंकज सुबीर ने इस उपन्यास में पकती फसल से लगी उम्मीदों के सहारे सुनहरे भविष्य की कल्पना में खोए किसान 'रामप्रसाद' के मार्फत आम भारतीय किसान का हाल उकेरा है। 'रामप्रसाद' के माध्यम से पंकज सुबीर बताते हैं कि आम किसान आज भी मौसम की मेहरबानी पर किस हद तक निर्भर है। मौसम के उतार-चढ़ाव के साथ ही किसानों की उम्मीदों का ग्राफ भी ऊपर नीचे होता रहता है। मौसम का परिवर्तन इस तेजी के साथ होता है कि किसान को सँभलने का मौका भी नहीं मिलता। सेंसेक्स एक बार डूबे तो सँभलने की उम्मीदें लगायी जा सकती हैं मगर किसान की फसल पर अगर पानी-पाला पड़ गया तो सँभलने के सारे विकल्प समाप्त हो जाते हैं। मौसम की आँख मिचौलियों के बीच किसान न केवल तहसील-बिजली-बैंक-को ऑपरेटिव जैसे विभागों के बकाये को चुकाता है बल्कि तमाम सामाजिक रस्मों को भी पूरा करता है। गाँवों में आज भी विवाह और मृत्यु दोनों ही, परिवार को समान रूप से क़र्ज़ में डुबा कर चले जाते हैं। विवाह में भी वही होता है, मेहमान जुटते हैं, पूरे गाँव को और आस-पास के रिश्तेदारों को खाना दिया जाता है और मृत्यु होने पर भी वही होता है। अंतर सिर्फ़ इतना होता है कि विवाह के अवसर पर एक उल्लास होता है मन में और मृत्यु के अवसर पर दु:ख होता है। किसान इन आयोजनों में आने वाले खर्चों को भी वहन करता है भले ही ये किसान की पत्नी के शरीर पर बचे एक मात्र गहने चाँदी से बनी 'तोड़ी' से पूरे होते हों। किसान की जद्दो जहद ये भी है कि वह 'तोड़ी' को बेचे या गिरवी रखे . . . अर्थात् यहाँ किसान के पास उपलब्ध विकल्प कितने तंग हैं, ये बस महसूस ही किये जा सकते हैं। इन गहनों को खरीदने-बेचने वाला एक ही समुदाय है जो 'साहूकार' के नाम से जाना जाता है। किसान और साहूकार का आपसी रिश्ता पीढ़ियों पुराना होता है और पूरी तरह विश्वास पर आधारित होता है। साहूकारों ने तो अपना ही गणित और पहाड़े बना रखे हैं। किसान जब आता, तो वह अपना जोड़-भाग किसान को बताने लगता है ''देख भाई तीन महीने का हो गया ब्याज, तो ढाई सौ के हिसाब से ढाई सौ तीया पन्द्रह सौ और उसमें जोड़े चार सौ पिछले तो पन्द्रह सौ और चार सौ जुड़ के हो गए छब्बीस सौ। उसमें से तूने बीच में जमा किए तीन सौ, तो तीन सौ घटे छब्बीस सौ में से तो बाक़ी के बचे अट्ठाइस सौ, ले माँड दे अँगूठा अट्ठाइस सौ पे। समझ में आ गया ना हिसाब? कि फिर से समझाऊँ?' किसान को क्या समझ में आना। वह चुपचाप से अपना अँगूठा लगा कर उठ के आ जाता है। रकम बढ़ती जाती, ब्याज बढ़ता जाता है और ज़ेवर धीरे-धीरे उस ब्याज के दल-दल में डूबता जाता, डूबता जाता है। किसान के जीवन में बढ़ते दुख उसकी पत्नी के शरीर पर घटते ज़ेवरों से आकलित किए जा सकते हैं। नई बहू जब आती है तो नए घाघरे, लुघड़े, पोलके के साथ तोड़ी, बजट्टी, ठुस्सी, झालर, लच्छे, बैंदा, करधनी में झमकती है। फिर धीरे-धीरे उम्र बढ़ने के साथ खेती-किसानी की सुरसा अपना मुँह फाड़ती है

और महिलाओं के शरीर पर से एक-एक ज़ेवर कम होता जाता है। ज़ेवर जो शरीर से उतर कर किसी साहूकार की तिजौरी में गिरवी हो जाते हैं। और किसान के घर की चीज़ एक बार गिरवी रखा जाए तो छूटती कब है? पहले सोने के ज़ेवर जाते है, फिर उनके पीछे चाँदी के ज़ेवर। हर ज़ेवर जब गिरवी के लिए जाता है, तो इस पक्के मन के साथ जाता है कि दो महीने बाद जब फ़सल आएगी, तो सबसे पहला काम इस ज़ेवर को छुड़वाना ही है। लेकिन अगर यह पहला काम ही अगर सच में पहला हो जाता, तो इस देश में साहूकारों की तिजोरियाँ और उनकी तोंदें इतनी कैसे फूल पातीं।

लेखक ने बड़ी कुशलता से बल्कि सच कहूँ तो एक कृषि अर्थशास्त्री और सांख्यिकी विशेषज्ञ की हैसियत से किसान की उपज के मूल्य को आज के उपभोक्ता सूचकांको के सापेक्ष विश्लेषण की कसौटी पर जांचा है। लेखक बहुराष्ट्रीय कम्पनी के उत्पादों को कच्चे उत्पादों के बीच का गणित बहुत ही सरल अन्दाज से समझाता है ''पन्द्रह सौ रुपये क्विंटल के समर्थन मूल्य पर बिकने वाली मक्का का मुर्गी छाप कार्न फ्लैक्स 150 रुपये में 500 ग्राम की दर से बिकता है। मतलब यह कि 300 रुपये किलो या तीस हज़ार रुपये क्विंटल की दर से। पन्द्रह सौ और तीस हज़ार के बीच बीस गुना का फ़र्क़ है। क्या यह बीस गुना आज तक किसी वित्त या कृषि मंत्री को दिखाई नहीं दिया। क्या एक सीधा-सा लॉजिक किसी को नहीं दिखाता कि जो किसान धूप, बरसात, ठंड में, खेतों में अपनी ज़िंदगी को झोंकते हुए पाँच महीने में जो फ़सल पैदा करता है, उसे केवल 1500 रुपये क्विंटल मिल रहा है और जो वातानुकूलित चैम्बर में बैठ कर मशीन से उस मक्का को केवल पाँच मिनट में चपटा कर कॉर्न फ्लैक्स बना रहा है, उसे बीस गुना, तीस हजार रुपये? समर्थन मूल्य तो है मगर वह किसको समर्थन देने के लिए बनाया गया है, यह बेचारा किसान कहाँ जानता है। किसान की ज़िंदगी में सचमुच परेशानियों का कोई अन्त नहीं होता। एक जाती है तो दूसरी आती है, मानो पहली वाली के टलने का रास्ता ही देख रही थी। जवाहर लाल नेहरू ने एक बार कहा था कि अगर देश को विकास की तरफ़ बढ़ते देखना है तो ग़रीबों को किसानों को ही सेक्रिफाइज़ करना पड़ेगा। आज़ादी को आज सत्तर साल होने को हैं लेकिन सेक्रिफाइज़ किसान ही कर रहा है। बाक़ी किसी को भी सेक्रिफाइज़ नहीं करना पड़ा। सबकी तनख़्वाहें बढ़ी, सब चीजों के भाव बढ़े लेकिन, उस हिसाब से किसान को जो न्यूनतम समर्थन मूल्य मिलता है उसमें बढ़ोतरी नहीं हुई। 1975 में सोना 540 रुपये का दस ग्राम था जो अब 2015 में 30 हज़ार के आस-पास झूल रहा है, कुछ कम ज़्यादा होता रहता है। 1975 में किसान को गेहूँ का न्यूनतम समर्थन मूल्य सरकार की आरे से तय था लगभग सौ रुपये आज 2015 मिल रहा है लगभग 1500। यदि सोने को ही मुद्रा मानें, तो 1975 में किसान पाँच क्विंटल गेहूँ बेच कर दस ग्राम सोना ख़रीद सकता था। आज उसे दस ग्राम सोना ख़रीदने के लिए लगभग 20 क्विंटल गेहूँ बेचना पड़ेगा। सोना तो किसान क्या खरीदेगा, उसके काम की तो चाँदी होती है, चाँदी 1975 में लगभग 1200 रुपये किलो थी और आज 38 हजार रुपये प्रति किलो है। 1990 में डीज़ल का भाव था साढ़े तीन रुपये प्रति लीटर और गेहूँ का 225 रुपये प्रति क्विंटल। मतलब किसान को खेती के लिए यदि डीज़ल खरीदना है तो एक क्विंटल गेहूँ बेच कर वह लगभग पैंसठ लीटर डीज़ल ख़रीद लेता था। आज डीजल लगभग साठ रुपये है और गेहूँ 1500 रुपये, मतलब एक क्विंटल गेहूँ के बदले केवल 25 लीटर डीज़ल आयेगा।

1975 में एक सरकारी अधिकारी का जो वेतन 400 रुपये था, वह जाने कितने वेतन आयोगों की अनुशंसाओं के चलते अब लगभग चालीस हज़ार है, सौ गुना की वृद्धि उसमें हो चुकी है। और ख़बर है कि सातवें वेतन आयोग का भी गठन हो गया है। भारत के एक सांसद को सब मिलाकर लगभग तीन लाख रुपये प्रति माह मिलता है, जिसमें सब प्रकार की सुविधाएँ शामिल हैं, लेकिन हम आज तक कोई ऐसी व्यवस्था नहीं बना पाए कि हमारे लिए अन्न उपजाने वाले किसान को तीन हज़ार रुपये प्रति माह, उसके परिवार को चलाने का दिया जाए। एक सांसद साल भर में चार लाख की बिजली मुफ़्त फूँकने का अधिकारी है लेकिन, किसान के लिए चार हज़ार की भी नहीं है। और उसके बाद भी सबके लिए सब्सिडी दे रहा है किसान। कोई नहीं सोचता कि बाज़ार में अनाज का दाम बढ़े कि नहीं, इसके लिए किसान की जेब से सब्सिडी ली जा रही है। और उस पर भी यह तुर्रा कि हम एक कृषि प्रधान देश में रहते हैं। यह दुनिया की सबसे बड़ी कृषि आधारित अर्थ व्यवस्था है, जिसमें हर कोई किसान के पैसों पर ऐयाशी कर रहा है। सरकार कहती है कि सब्सिडी वह बाँट रही है जबकि हक़ीक़त यह है कि न्यूनतम समर्थन मूल्य के आँकड़े में उलझा किसान तो अपनी जेब से बाँट रहा है सबको सब्सिडी। यदि चालीस साल में सोना चालीस गुना बढ़ गया तो गेहूँ भी आज चार हज़ार के समर्थन मूल्य पर होना था, जो आज है पन्द्रह सौ। मतलब यह कि हर एक क्विंटल पर ढाई हज़ार रुपये किसान की जेब से सब्सिडी जा रही है।''

किसान की मजबूरियों का चिट्ठा आगे बढ़ाते हुए लेखक रहस्योद्घाटन करता है कि ''एक एकड़ में खरपतवार नाशक, कीट नाशक और खाद का ख़र्च होता है, लगभग पाँच हज़ार रुपये। पलेवा और सिंचाई पर बिजली या डीज़ल का ख़र्च क़रीब तीन हज़ार रुपये प्रति एकड़ होता है। इसके बाद गेहूँ की कटाई तथा थ्रेशर से निकालना भी, लगभग दो हज़ार रुपये प्रति एकड़ पड़ता है। और लगभग सात आठ सौ रुपये प्रति एकड़ मंडी तक की ढुलाई। एक हज़ार रुपये अन्य सभी प्रकार का ख़र्च होगा। इस प्रकार मोटा-मोटा हिसाब लगाया जाए तो प्रति एकड़ क़रीब पन्द्रह हज़ार रुपये का ख़र्च तो तय ही है। एक एकड़ में यदि सब कुछ बिल्कुल ठीक-ठाक रहा, तो लगभग सोलह से बीस क्विंटल के बीच गेहूँ का उत्पादन होता है। यदि हम अठारह क्विंटल

के आँकड़े को ही औसत मान कर चलें, तो एक एकड़ का किसान अपने परिवार के साल भर खाने के लिए कम से कम सात आठ क्विंटल तो बचाएगा। बाक़ी बचा दस क्विंटल जिसको सरकारी समर्थन मूल्य पन्द्रह सौ रुपये प्रति क्विंटल के हिसाब से बेचने पर मिलगा पन्द्रह हज़ार रुपये, और लागत ? वही पन्द्रह हज़ार रुपये। यदि किसान का समर्थन मूल्य भी पिछले पच्चीस सालों में बढ़े सोने के हिसाब से बढ़ता, तो उसे आज पन्द्रह नहीं साठ हज़ार मिलते। और अगर अधिकारियों-कर्मचारियों, सांसदों-विधायकों के पैशाचिक वेतन आयोगों के हिसाब से सौ गुना बढ़ता, तो उनको आज दस क्विंटल के एक लाख मिलते। मगर नहीं, उसे मिलता है केवल वह आठ क्विंटल प्रति एकड़ गेहूँ, जो उसका परिवार साल भर खाएगा। उसके पास इतना भी नहीं बचा है कि अगर उसने खेत ठेके पर लिया है किसी खेत मालिक से, तो उसका ख़र्च अलग से होना है। सामान्य रूप से दज हज़ार रुपये प्रति एकड़ में उपजता है अठारह क्विंटल सा सत्ताइस हज़ार का गेहूँ और लागत पन्द्रह हज़ार, साथ में दस हज़ार ठेके का मिला कर पच्चीस हज़ार रुपये। मतलब बचत दो हज़ार रुपये इसीलिए छोटे किसान का पूरा परिवार ख़ेतों में मज़दूर की तरह लगा रहता है। ताकि मजदूरी वाले पैसे को ही बचा सके। इसके बाद भी अगर बीच में आसमानी-सुलतानी हो गई, मौसम की मार पड़ गई, और उपज घट गई, तो उन हालात में किसान का क्या होगा, यह आप ऊपर के आँकड़ों से अनुमान लगा सकते हैं। छोटा और सीमांत किसान जीवन भर क़र्ज़ में रहता है, अपनी उपज मे से सारे देश को राक्षसी सब्सिडी बाँटता है और ख़ुद क़र्ज़ में रहता है।''

किसान की दुर्दशा पर तब्सिरा करते वक्त लेखक ने 'रामप्रसाद' के उन निजी लम्हों पर भी रोशनी डालने का प्रयास किया है, जो प्राय: अंधेरे का शिकार होकर रह जाते हैं। तमाम लेखकों की लफ़्ज़ों की रोशनी इस अंधेरे को चीरने में नाकामयाब रहती है लेकिन पंकज सुबीर ने यहाँ भी अपनी उपस्थिति दर्ज की है। किसान का जेहन यूँ तो हमेशा आर.आर.सी. (रिकवरी रिवन्यू सर्टीफिकेट), बरसात, धूप, खाद, पानी, सूद वगैरह में में ही घूमता रहता है परन्तु कभी-कभी वो अपने लिए भी जीता है। इन्हीं कुछ निजी लम्हों में किसान रामप्रसाद अपनी पत्नी कमला के बारे में सोचता है। लेखक के शब्दों में ''शीरीं-फरहाद, सोहनी-महिवाल, जैसे नामों के साथ आपको कमला-रामप्रसाद की ध्वनि बिल्कुल अच्छी नहीं लगेगी। लेकिन, यह दृश्य उन नामों के प्रणय दृश्यों से किसी भी तरह फीका नहीं है। इसमें भले ही चटख़ रंग नहीं है लेकिन, धूसर रंग तथा उन रंगों के बीच से अँखुआता प्रेम का उदास सा मटमैले रंग का अंकुर, उन चटख़ रंगों पर कई गुना भारी है। उतरती हुई फागुन की रात में, देहरी के बाहर बैठा प्रेमी और देहरी के अन्दर बैठी प्रेमिका। दोनों के अंदर एक गहरा दु:ख है, एक जमी हुई उदासी है, कुछ ठहरे हुए से आँसू हैं। दु:ख जीवन का और उदासी जीने की। उस दु:ख और उदासी के धुँधलके में, दरवाज़े के बाहर बैठे प्रेमी के पास कुछ अलब्ध है, अप्राप्य है, अभीसिप्त है, जो वह अपनी प्रेमिका के लिए लाया है। झूठ बोलकर लाया है, बेशरम होकर लाया है, माँग कर लाया है, इस बात से प्रेम के होने पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है। कैसे बनाई जाएगी इस प्रेम दृश्य की पेंटिंग? क्या किसी चित्रकार के पास है वह दृष्टि? जो इस निश्छल प्रेम के दृश्य को ठीक-ठाक तरीके से अपने कैनवास पर उतार दे। इस दृश्य में गुलमोहर नहीं है, गुलाब नहीं है, मोरपंख नहीं है, बाँसुरी नहीं है, कुछ भी तो नहीं है जो प्रेम की पारंपरिक शब्दावलि में होता है। तो फिर कैसे बनाया जा सकेगा इस चित्र को। इस धूसर रंग के प्रेम को अच्छी तरह से समझने के लिए और भी तो जाने क्या-क्या समझना होगा चित्रकार को। रामप्रसाद और कमला, इनका चित्र शायद कोई भी चित्रकार बनाना न चाहे, बना न सके। आगत और विगत को कुछ समय के लिए पूरी तरह से विस्मृत करके यह दोनों इस समय केवल वर्तमान में हैं। केवल और केवल वर्तमान में।'' मुझे याद आता है कि इतिहास का वह पृष्ठ जिसमें एक महान इतिहासकार ने भारत के स्वर्णकाल कहे जाने वाले 'गुप्तकाल' की समीक्षा करते हुए लिखा था कि ये काल स्वर्णकाल था लेकिन उनके लिए जो राजाओं की प्रशस्ति ग्रंथ लिखते थे, गीत-संगीत में डूबे रहते थे, व्यापार करते थे, शहरों में रहते थे . . . यह काल उनके लिए 'स्वर्णकाल' नहीं था जो गाँवो में रहते थे और कृषि करते थे, श्रम करते थे। लेखक इसी बात को सिद्ध करते हुए कहता है कि वास्तव में तो श्रम को कभी भी, कोई भी नहीं देखता है। श्रम हमेशा ही टेकेन फार ग्रान्टेड होता है। (पृष्ठ-111)

लेखक ने लोक जीवन की झाँकी को बिल्कुल जीवंत अंदाज़ में प्रस्तुत किया है। उदाहरण के तौर पर जब रामप्रकाश के बहनोई की माँ की मृत्यु हो जाती है तो मातम का दृश्य लेखक ने बड़ी ही कुशलता के साथ जिया है। सूखा पानी और आस-पास के ग्रामीण अंचलों में महिलाओं द्वारा मातम के अवसर पर रोने का अभी भी एक दिलचस्प तरीका है। मौत और दिलचस्प? हाँ यही सच है। यहाँ पर महिलाएँ रोती कम हैं, गाती ज़्यादा हैं। उस व्यक्ति का नाम ले-लेकर कोई भजन सा गाती हैं और अंत में रोने की ध्वनि उत्पन्न करती हैं। जो गाती हैं, उसमें मरने वाले के गुण, उसकी अच्छाई एक-एक कर बताती हैं और रोती जाती हैं। उससे जुड़ी घटनाएँ उसके साथ के अपने व्यक्तिगत अनुभव, या वह मरने से पहले क्या कर रहा था, मतलब सब कुछ बाक़ायदा गा-गाकर बोलती हैं और हर पंक्ति के अंत में फिर रोती हैं, ज़ोर से। यह रोना दिखाव का नहीं होता है बल्कि सचमुच का होता है, वह सचमुच ही दुखी होती हैं। लेकिन पारंपरिक रूप से उनको अपना दुख गा-गाकर ही व्यक्त करना होता है। पुरुष इस बीच केवल तैयारियों में लगे होते हैं, वह बैठकर कोई मातम नहीं करते। वह ही ऊँचे स्वर में उसको गा दे और बाद में जब वह रे की ध्वनि उत्पन्न कर रोए तो रोने में सब की सब महिलाएँ स्वर में स्वर मिला दें। कुछ इस प्रकार -

'अरी तुम तो भोत अच्छी थी, काँ चली गी रे ऽऽऽऽ'

'अरे अभी तो मिली थी मोय बड़नगर वाली बइ की शादी में रे ऽऽऽऽ'

'अच्छी खासी तो ले के गया था, डाग्दर होन ने मार डाली रे ऽऽऽऽ'

'सुबह-सुबह रोज दिख जाती थी रे ऽऽऽऽ'

'अरे म्हारा राम जी यो तमने कैंइ कर दियो रे ऽऽऽऽ'

'म्हारे से कहती थी कि सुमन तू म्हारे सबसे अच्छी लगे है रेऽऽऽऽ'

कर्जे और आर.आर.सी. की धनराशि चुकाने के समय किसान की मनोदशा का एक और उदाहरण मन में कहीं संताप, गहरी सी कुंठा छोड़ जाता है। ''कमला की तोड़ी बिक गई। बिकनी ही थी। छोटी जोत के किसान की पत्नी के शरीर पर के ज़ेवर क्रमशः घटने के लिए होते हैं। और हर घटाव का एक भौतिक अंत शून्य होता है, घटाव की प्रक्रिया शून्य होने तक जारी रहती है। चूँकि भौतिक अवस्था में गणित की तरह ऋणात्मक संख्या नहीं होती, इसलिए कह सकते हैं कि भौतिक रूप से घटाव की हर प्रक्रिया शून्य के उपजने तक होगी। इस प्रक्रिया की गति भले ही कम ज़्यादा हो सकती है लेकिन अंत लगभग तय होता है। राप्रसाद ने कमला की तोड़ी को सुनार की दुकान पर तौल होने के बाद एक बार अपने माथे पर लगाया, कमला ने जैसे लगाया था वैसे ही। महिला पुरखिनों की आख़िरी निशानी। हर किसान को विरास में उसके महिला पुरखे और पुरुष पुरखे दोनों ही कुछ न कुछ देकर जाते हैं। पुरुष पुरखे, खेत, ज़मीन और उन पर लदा हुआ क़र्ज़ छोड़ कर जाते हैं, तो महिला पुरखिनों की ओर से ज़ेवर मिलते हैं। कुछ धातुएँ। रामप्रसाद ने अपनी महिला पुरखिनों को उस दौरान याद भी किया और उनसे क्षमा भी माँग ली। क्षमा इसलिए माँग ली कि अब आगे परंपरा में कोई भी ज़ेवर, कमला अपनी बहू को नहीं दे पाएगी। वह परंपरा यहाँ पर, कमला पर आकर समाप्त हो रही है। जब परिवार की महिला के पास इन धातुओं का अंत हो जाता है, तब तय हो जाता है कि किसानी करने वाली बस यह अंतिम पीढ़ी है, इसके बाद अब जो होंगे, वह मज़दूर होंगे। यह धातुएँ बिक-बिक कर किसान को मज़दूर बनने से रोकती हैं।'''

उपन्यास का यू.एस.पी. इसकी भाषा है, और भाषा में भी मुहावरों और लोक कहावतों का प्रयोग है। 'अकाल में उत्सव' का एक प्रमुख पात्र मोहन राठी है जो प्रशासन का चाटुकार है, बेहतरीन मनोवैज्ञानिक है, अवसरवादी है और बेहतरीन वक्ता भी है। उसकी खासियत यह है कि वह अपनी बात मुहावरों से ही शुरू करता है। सच तो यह है कि कहावतें और मुहावरे तो भाषा का असली रस हैं। यदि उनको निकाल दिया जाए, तो भाषा नीरस हो जाएगी, उसमें कुछ भी आनंद नहीं बचेगा। मुर्दा है वह भाषा, जिसमें कहावतें और मुहावरे नहीं है। इनके प्रयोग से बात का वजन बढ़ जाता है और सुनने वाले पर अच्छा प्रभाव भी पड़ता है। लेखक ने इस पात्र के जरिये तमाम मुहावरों को उद्धृत किया है। उदाहरण के तौर पर -

'कोरी का जमाई बड़ा जानपाड़ा, चाहे जो करवा लो.....!'

'रांडया रोती रेवेगी और पावणा जीमता रेवेगा।'

'बड़े-बड़े साँप-सँपोले आए, हम कहाँ आईं बिच्छन देह .....?'

'उठ राँड, घर माँड, फिर राँड की राँड.....!'

मोहन राठी एक ऐसा पात्र है जो भाषा में नए प्रतिमान तो गढ़ता ही है एक मनोवैज्ञानिक की हैसियत से भी प्रकट होता है। लेखक इस पात्र के माध्यम से कहता है कि ''प्रशंसा, या विरोधी की निंदा सुनना है तो शारीरिक सुख जैसा ही आनंद लेकिन, उसमें और इसमें एक बड़ा अन्तर यह होता है कि यहाँ पर कोई चरम संतुष्टि का बिन्दु नहीं आता, यहाँ पर कोई स्खलन जैसा नहीं होता है। हर आनंद किसी बिन्दु पर जाकर समाप्त होता है लेकिन, यह किसी भी बिन्दु पर समाप्त नहीं हो सकता। यह तो एक सतत् प्रक्रिया है। यह त्वचा रोग को नाखून से खुजाने जैसा आनंद है, आप जब तक खुजाते रहेंगे, तक तक आपको आनंद आता रहेगा, बल्कि बढ़ता रहेगा आनंद। आप खुजाना बंद करेंगे, तो आनंद आना बंद हो जाएगा, उसके स्थान पर फिर से खुजालने की उत्कंठा बढ़ जाएगी।'' इस तरह के मनोवैज्ञानिक कथन उपन्यास की गति को तो आगे बढ़ाते ही हैं प्रस्तुति में ग़ज़ब का आकर्षण पैदा करते हैं। लेखक ने इस मर्म को पूरे उपन्यास में पकड़े रखा है। लेखक ने कलेक्टर श्रीराम परिहार, ए.डी.एम. राकेश पाण्डे तथा उनके दल के अन्य सरकारी गैर सरकारी साथियों के हवाले से शहरी परिवेश का वह हाल प्रस्तुत किया है कि जिसमें आये हुए अवसर को 'आप्टिमम लेवल' तक यूज करना है और अपना काम निकालना है। यहाँ पर हर पात्र स्वार्थसिद्धि तक ही सीमित है।

बहरहाल 'अकाल में उत्सव' हमारे समय का वह महत्त्वपूर्ण उपन्यास है जो यह दिखाता है कि हम समानान्तर रूप से एक ही देशकाल परिस्थिति में दो अलग-अलग ज़िंदगियाँ जी रहे हैं। एक ओर दबा कुचला हिन्दुस्तान है और हिन्दुस्तान का किसान है जिसकी दुनिया अभी भी न्यूनतम समर्थन मूल्य पर ही टिकी हुई है और दूसरी तरफ चमकता दमकता इण्डिया है जहाँ तकनीकी प्रगति है, धन है, अवसर है।

लेखक पंकज सुबीर ने 'अकाल में उत्सव' के माध्यम से एक ऐसी कृति दी है जो हमारे देश को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण औजार साबित हो सकती है। उन्होने अपनी कृति के माध्यम से ऐसी चीखों को हम तक पहुँचाने का काम किया है जो कमोबेश अनसुनी ही दबी रह जाती हैं। प्रमुख पात्र रामप्रसाद के करुणान्त पर यही आह निकलकर रह जाती है कि 'आख़िरी शब दीद के क़ाबिल थी बिस्मिल की तड़प, सुब्ह दम कोई अगर बाला-ए-बाम आया तो क्या.....।'

****

'सिंह सदन', राजा का बाग, गली -7, मैनपुरी, उप्र, मो. 9412290079
(लेखक भा.प्र.से. के वरिष्ठ अधिकारी हैं।)

नक़्क़ाशीदार केबिनेट
नारी संघर्ष की एक सजीव गाथा

समीक्षक - डॉ. अमिता

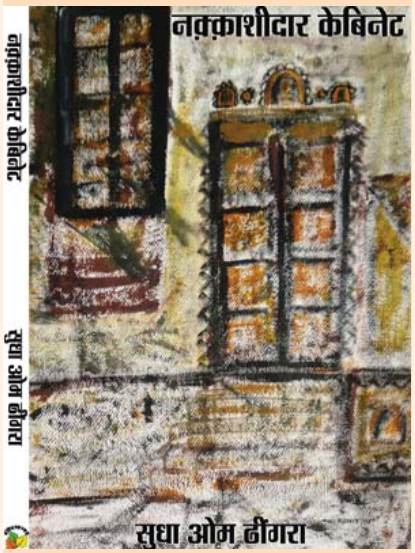

पुस्तक : नक़्क़ाशीदार केबिनेट
उपन्यास - सुधा ओम ढींगरा
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर मप्र, दूरभाष
07562405545
मूल्य : 150 रुपये,
पृष्ठ 120,
वर्ष 2016

'नक़्क़ाशीदार केबिनेट' सुधा ओम ढींगरा का 2016 में प्रकाशित नवीन उपन्यास है। सुधा ओम ढींगरा का विदेश (अमेरिका) में रहते हुए अपने देश भारतवर्ष और प्रांत (पंजाब) से गहराई से जुड़े रहना इस बात को सिद्ध करता है कि उनके भीतर भारत की मिट्टी की महक ज़िंदा है। उसके दर्द, पीड़ा और संवेदनाएँ जीवंत हैं। उनका उपन्यास 'नक़्क़ाशीदार केबिनेट' मूल रूप में पंजाब प्रांत के एक परिवार और उसके साथ उसके परिवेश के बनते-बिगड़ते रिश्तों की कथा है, जिसमें नारी संघर्ष बड़े प्रभावशाली रूप में उभरा है। नारी संघर्ष में सोनल और मीनल की कहानी बड़े मर्मस्पर्शी रूप में उपन्यास के पृष्ठों पर रूपायित है। इस संघर्ष में सोनल जैसी लड़की का साहस, धैर्य पाठक के हृदय को छू लेता है। इसके साथ ही पंजाब से विदेश की ओर आकर्षण जाल में फँसी नारियों के विवाह के चक्रव्यूह को उपन्यासकार ने बड़ी सच्चाई से उतारा है। नशाखोरी, आतंकवाद और खालिस्तान जैसी समस्याओं में और संवेदनाओं के मध्य गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविन्द सिंह जैसे महान् गुरुओं के हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए बलिदान की कहानी रोचक ढंग से लेखिका ने सुनाई है। लेखिका की मानवतावादी दृष्टि सर्वत्र सजग है।

उपन्यास में डॉ. सम्पदा और सार्थक पति-पत्नी हैं। विदेश (अमेरिका) में रहते हुए अपने देश और पंजाब से गहरे जुड़े प्रतीत होते हैं। अमेरिका में 'हरीकेन' और 'टॉरनेडो' तूफ़ान पूरी शक्ति के साथ उनके प्रांत में आ जाते हैं जिसके कारण बारिश और चक्रवात उनके निवास के स्थान पर ज़बरदस्त क्षति पहुँचाते हैं। उनके घर में पानी घुस आता है और पेड़ टूट कर उनका घर तोड़ देते हैं। इसी प्रकार जहाँ अनेक नुकसान होते हैं वहीं नक़्क़ाशीदार केबिनेट रोज़ वुड से बना हुआ (जो मध्ययुगीन कला का सुन्दर नमूना) क्षतिग्रस्त हो जाता है। वह पानी में औंधा पड़ा होता है। उसमें वर्षों की यादें थीं। इसमें एक काले रंग वाली डायरी भी थी, जिसे फ़ुर्सत में लेखिका पढ़ती जाती है और स्मृतियों में बसी कहानी डायरी

शैली में उपन्यास पर उतरती जाती है। कहानी वर्तमान से अतीत की ओर, फिर अतीत से वर्तमान में आ जाती है।

डॉ. सम्पदा एक समाज सेवी संस्था से वर्षों से जुड़ी है। वहाँ उसकी मुलाकात सोनल से होती है। उसकी चाल-ढाल और लहजे से डॉ. सम्पदा समझ जाती हैं कि वह एक शिक्षित लड़की है और ग्रामीण पंजाब से संबंधित है। उपन्यास में प्रारंभ में ही यह संदर्भ स्पष्ट हो जाता है ''पहली मुलाकात में वह मेरे इतने क़रीब आ गई कि हम बड़ी देर तक बैठे बातें करते रहे.....जब तक वह शारीरिक और मानसिक रूप में सशक्त नहीं हुई। इस देश में उसने अपने अस्तित्व को तलाशा और अपने पाँव पर खड़ी होकर, उन सबसे अपने हिस्से की खुशियाँ वापिस लीं, जिन्होंने जवानी और बचपन में उससे वे छीन ली थीं। मेरे लिए वह नारी सशक्तिकरण का जीवंत उदाहरण थी। उसने जीवन में घटनाओं, दुर्घनाओं, विश्वासघात धोखा और फरेब़ के जिस दौर को देखा था, उन सबसे निकलकर उसने जो कर दिखाया वह खास था।'' इस प्रकार वास्तव में यह उपन्यास सोनल के विकट व भयावह संघर्ष की रोचक कथा है जो अनेक संघर्षों से लड़कर भी हारती नहीं है, टूटती नहीं है। अनेक लड़कियों के लिए उसका संघर्ष एक प्रेरणा के रूप में सामने आता है जो विषम स्थितियों में डटकर लड़ती है।

उपन्यास में सोनल के दादा जी का नाम सोहनचंद मनचंदा था। उन्हें सब बाऊ जी कहते थे। वे ज़मींदार थे। विरासत में दादा जी से ज़मींदारी पिताजी को मिली थी। पिताजी का नाम त्रिलोक चंद था जो मिलिट्री से रिटायर होकर घर आ गए थे। मीनल और सोनल त्रिलोकचंद की दो पुत्रियाँ थीं। सोनल का चाचा मंगल आलसी, शराबी और जुआरी था। उसने चाचा जैसे रिश्ते को कलंकित किया था। मंगल की ऐयाश प्रवृत्ति की वजह से कोई माँ-बाप उसे अपनी लड़की देने को तैयार नहीं थे। लेकिन पड़ोस के एक गाँव से रिश्ता आया तो दादा-दादी ने इंकार नहीं किया, उन्होंने सोचा कि लड़का सुधर जाएगा तो सोहनचंद मनचंदा ने मंगल का विवाह कर दिया। लेकिन मंगल में कोई सुधार नहीं आया। मंगल की पत्नी मंगला के साथ उसका भाई भी उनके साथ रहने लगा। मंगला जिस घर से आई थी उस घर का माहौल भी अच्छा नहीं था। उनकी पुश्तैनी जायदाद को बाप और भाई उड़ा चुके थे। मंगल और उसका साला शराब, ताश, जुए में व्यस्त रहते और गाँव की बहू-बेटियों पर फब्तियाँ कसते। सोनल की माँ बी.ए. पास थी इसीलिए मीनल और सोनल को पढ़ाना चाहती थीं। उपन्यासकार द्वारा नारी उत्कर्ष मीनल और सोनल के परिप्रेक्ष्य में साकार हुआ है।

बाऊ जी ने मंगल-मंगला और उसके भाई को खेतों में बने घर में पहुँचवा दिया। मीनल ने इस कार्य में दादा-दादी, पिताजी-माँ के लिए सहयोग दिया था। मीनल के व्यवहार पर मंगला कह गई 'मीनल तुझे तो मैं देख लूँगी'..... यह वह समय था जब पंजाब में अधिकतर युवक दुबई, कनाडा और खाड़ी के देशों में जाने शुरू हो गए थे। कई घरों के लोग पहले से इंग्लैण्ड में थे। विदेश से पैसा आ रहा था। पढ़ने-लिखने की तरफ किसी का रुझान नहीं था। परिणाम यह हो रहा था कि खाली दिमाग, पैसे की अधिकता और नशा के वे आदी लोग निकम्में बनते जा रहे थे।

इस वातावरण के चित्रण में लेखिका ने कौशल से काम लिया है। कथा में रोचकता, जिज्ञासा, कौतूहल बना रहता है। कथा के प्रवाह में पाठक पृष्ठ पर पृष्ठ पढ़ता जाता है और कथा के प्रवाह के साथ बहता जाता है। मीनल और सोनल के साथ पम्मी (परमिंदर) और सुक्खी (सुखवंत) सुखविंदर का भी उल्लेख मिलता है। ये शिक्षित वातावरण के लड़के हैं और इनके परिवार को कामरेडों का परिवार भी कहा जाता है। मीनल को पम्मी प्यार करता है। किंतु मीनल मंगला चाची के दुष्कर्मों का शिकार होकर मारी जाती है। मंगल और दिलगीर पकड़े जाते हैं। उन्होंने गुनाह कबूल किए। दिलबाग और दिलशाद भी पकड़े जाते हैं। मंगला के साथ उनके माँ-बाप और दो भाई भी रहने लगते है। मीनल की हत्या के केस में जो फैसला आया उसमें दिलबाग और दिलशाद को फाँसी की सज़ा सुनाई गई और मंगल तथा दिलगीर को उम्र भर का सख्त कारावास। मंगला के बाप ने कहा ''उसने अपनी सुन्दर बेटी मंगल जैसे नालायक के पल्ले इसीलिए बाँधी थी, उसकी नज़र बाऊ जी की ज़मीनों, हवेली और इस कमरे पर थी जिसमें पीढ़ी दर पीढ़ी से हीरे जवाहरात, सोना और चांदी दबे पड़े थे। उन्हें तो वह लेकर रहेगा, चाहे उसके अपने दो और बेटे गँवाने पड़े.... ।'' उपन्यास में सोनल महाराजा रणजीत सिंह के समय का वर्णन करती है। और तत्कालीन पंजाब की आंतरिक और बाहरी स्थिति का उल्लेख करते हुए यह स्पष्ट करती है कि हमारे परिवार के बुज़ुर्गों के पास तोशखाने का काफी धन था। वे महाराजा रणजीत सिंह के शासन काल में तोशखाने थे। उपन्यास में वर्णन शैली बेजोड़ है।

उपन्यास में पम्मी के मँझले भाई सुक्खी (सुखवंत) से सोनल की दोस्ती हो जाती है। सुक्खी को पढ़ने का शौक था। सोनल बताती है कि सुक्खी की किताबों से वह भी साहित्य की अनेक पुस्तकें पढ़ जाती है। उसने यूरोप और हिन्दी साहित्य के अनेक लेखकों को पड़ा था सुक्खी, पम्मी और सोनल जैसे अनेक युवक-युवतियाँ प्रगतिशीलता की नई सोच से जुड़ने लगे। ये लोग किसानों और दलितों को उनके अधिकारों के प्रति सचेत करने लगे। सोनल डी.ए.वी. कॉलेज में पढ़ी उसने बी.ए. ऑनर्स करने के बाद साइक्लोजी में एम.ए. किया। लेखिका ने ग्रामीण परिवेश को प्रगतिशीलता की ओर अग्रसर करके नई सोच को प्रश्रय दिया है जो समयानुकूल आवश्यकता थी। लेखिका ने इस दौर में खालिस्तान की लहर का उल्लेख भी किया है, जिसमें अधिकांश युवा भटक गए थे लेकिन कुछ युवा इस हिंसा का विरोध कर रहे थे, जिसमें निर्दोष लोगों की हत्या हो रही थी। पम्मी जैसे युवा की भी खालिस्तानी हत्या कर देते थे क्योंकि वह निर्दोष लोगों की हिंसा के विरोध में होता है। परिवेश के वस्तुगत सत्य को सच्चाई के साथ लेखिका ने जीवंत बनाया है। आपरेशन ब्लू स्टार, इंदिरा की हत्या और तदनंतर फैली हिंसा का उपन्यासकार ने सजीव चित्रण किया

है ''इस दौर में पंजाब, दिल्ली और देश के अन्य भागों में हिंसा भड़क उठी थी। और इस हिंसा ने वीभत्स रूप धारण कर लिया था। इसकी आड़ में, आतंकवाद के नाम पर कई लोगों ने तो आतंकवादी रूप घर निजी रंजिशें निकालनी शुरूकर दी थीं।'' उपन्यासकार ने 1980 के आस-पास के परिवेश की सच्चाई के साथ उपन्यास में चित्रित किया है, जो एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ बनकर उभरता है।

सुक्खी (सुखवंत) जो सोनल का दोस्त होता है, वह आई.पी.एस. में उत्तीर्ण होकर पुलिस अफसर हो जाता है। एक हादसे में बाऊ जी, पिताजी और बीजी को गोलियों से भून दिया जाता है। केवल सोनल और उसकी माँ घर में बच जाते थे। यह मर्मस्पर्शी कथा यहीं खत्म नहीं होती। सोनल के मामा, नाना परिवार सहित सोनल के घर पर आकर रहने लगते हैं। वे आये थे दु:ख में शामिल होने के लिए, लेकिन उन्होंने सोनल के घर पर डेरा जमा लिया। झाई जी कहती थीं ''उनके मायके वाले भी कम स्वार्थी नहीं'' यह सारा खेल, धन-सम्पत्ति को हथियाने के लिए होता है जिसमें भावानात्मक रिश्तों की कोई जगह नहीं होती केवल खोखलापन दिखाई देता है। सोनल के चाचा, चाची, मामा, नाना के सभी रिश्तों में कहीं आत्मीयता न थी।

इस कथा में सबसे पीड़ादाई स्थिति तब आती है जब डॉ. बलदेव सिंह की शादी सोनल से करवाई जाती है। यह डॉ. बलदेव झूठ फरेब का पुतला होता है जिसका वास्तव में सुलेमान नाम होता है। ननिहाल की ओर से रचे गए नाटक में सोनल फँस जाती है। उसे समझाया जाता है कि बलदेव उसे अमेरिका में पी-एच.डी. करने देगा-''बलदेव ने मुझे बताया था कि वह अमेरिका में डॉक्टर है और वह मेरी इच्छा से वाकिफ हो गया है। वह मुझे वहाँ साइक्लोजी में पी-एच.डी. ज़रूर करवाएगा।'' सोनल को सुक्खी बहुत अच्छा लगता था। वह वास्तव में उसे बहुत प्यार करती थी। पर माँ ने समझाया ''दिल को सँभाल ले मेरी बच्ची, मास्टर जी का एक बेटा जा चुका है। दूसरे की ज़िंदगी खतरे में डालने का तुझे कोई हक नहीं। बन्दूक की गोलियाँ किसी की सगी नहीं होती। तुमसे अधिक इसे कौन समझ सकता है? मन को मार ले और आगे होने वाले विनाश को रोक। जान है तो जहान है। तुम्हारी और मेरी जान को खतरा है।''

सोनल सोचती है मेरे सामने माँ के अतिरिक्त कौन था। माँ ने ठीक ही समझाया कि सुक्खी का भाई पम्मी पहले ही गोलियों का शिकार हो गया था। इस स्तर पर आकर सोनल बहुत अचेत हो जाती है, सुक्खी को लेकर उसका हृदय टूटता है ''माँ ने बाऊजी और पिताजी की कसम दे दी थी। मुझे शादी तो अब अमेरिका के डॉक्टर से करनी ही पड़ेगी। मेरे पास जो विकल्प था, वह छूट गया था। समुद्र के किनारे खड़ी एक खूबसूरत जहाज़ को देख रही थी जिस पर सवारी की मौन इच्छा मेरे भीतर पता नहीं कब से पल रही थी, उस आकांक्षा को अब दबाना पड़ा था।''

उपन्यास में सोनल का यह दर्द अपने समूचे आवेग में फैला हुआ है, जो पाठक के मर्म को छू लेता है। और फिर वही होता है जिसकी सोनल को आशंका थी। डॉ. बलदेव का झूठ सामने आता है वह केवल उसकी हीरे, जवाहरात जैसी दौलत को हड़पने के लिए वह नाटक रचता है। उपन्यास में बलदेव अपने पारिवारिक लोगों को कहता है- ''...पहले इसका विश्वास जीतो। उसके नाने को वादा किया है, कागज़ों पर उसके साइन करवा कर दूँगा और बदले में उसके घर में पड़े हीरे मेरे होंगे। मुझे हीरे चाहिए। फिर हम सब इकट्ठे उसे नोच खाएँगे।'' सोनल को जब यह ज्ञात हो जाता है तो वह इस नरक से भागने का प्रयत्न करती है ''मुझे लगा मैं धरती में धँसी जा रही हूँ, दीवार का सहारा लेकर मैंने अपने आपको सँभाला। घबराने और बेचैन होने का समय नहीं था। पता नहीं कहाँ से मुझ में इतनी फुर्ती आ गई, मैंने चारों ओर नज़र दौड़ाई। कमरे में खिड़की थी पर शीशा लकड़ी के फ्रेम में फिट था। बाथरूम में खिड़की थी। जल्दी से जाकर देखा। वह बाहर को खुल सकती थी। दो पाटों की खिड़की थी। ज़्यादा ऊँची भी नहीं थी। मैं उस तक पहुँच सकती थी। मुझे पता भी नहीं चला, कब उस खिड़की से बाहर आ गई और उसके साथ लगे वृक्ष पर झूलने लगी। वृक्षों पर चढ़ना-उतराना तो बचपन में सीखा था। खूब कूदी हूँ वृक्षों पर। आसानी से उतर गई।'' लेखिका की कलम से सोनल के साहस का यह चित्रण बहुत प्रभावशाली बनकर उपन्यास के सौन्दर्य को बढ़ा रहा है।

लेखिका यह बताना चाहती है कि उपन्यास में डनीस और रॉबर्ट सोनल को शरण देते हैं। डनीस और रॉबर्ट जैसे लोग भी दुनिया में हैं जो बेसहारा को सहारा देकर उसके संरक्षण में जीवन की सार्थकता ढूँढ़ते हैं। सोनल हिम्मत जुटाती है। सोनल उपन्यास में एक स्थान पर कहती है ''बाऊजी, बीजी और पिताजी की मौत के बाद मैं एक रात भी चैन से नहीं सोई थी। यही डर लगा रहता था पता नहीं कौन कहाँ से आकर, कब मुझे मार डाले।''

लेकिन सोनल की कथा यहीं खत्म नहीं होती सोनल बलदेव जैसे दुष्ट लोगों को पुलिस के हाथों पकड़वाने के लिए कृतसंकल्प हो जाती है। रॉबर्ट और डनीस के साथ के बाद वह एक संस्था में डॉ. सम्पदा को मिलती है। सोनल सुक्खी को फ़ोन करती है। सुक्खी अमेरिका आता है और तदनंतर बलदेव जैसे दुष्ट लोग और उनका गिरोह पकड़ा जाता है। सोनल को अमेरिका छोड़ एस.पी. सुखवंत भारत नहीं लौटता अपितु वहीं अमेरिका में ही बस जाता है। अन्याय का अंत करवाकर लेखिका ने आशावादिता और आस्था का संकेत दिया है जो प्रेमचंद की आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी शैली से मेल खाता है।

लेखिका ने वर्णनात्मक शैली में बेजोड़ कथा कही है जो नारी संघर्ष की सच्ची गाथा है। कथा में कहीं भी अस्वाभाविकता या असहजता नहीं प्रतीत होती। इसमें कल्पना का मिश्रण अंश मात्रा किया भी हो तथापि कथा बड़ी जीवंत लगती है।

लेखिका ने पाश कवि के द्वारा भारत की आज़ादी के बाद की तस्वीर को भी चित्रित किया है ''सुक्खी ने उत्तर दिया भारतीय जनता के गौरवशाली संघर्ष और विश्व

पूंजीवाद के आंतरिक संकट के परिणाम स्वरूप जो राजनीतिक आज़ादी 1947 में मिली, उसका लाभ केवल पूंजीपतियों, सामंतों और उनसे जुड़े मुट्ठी भर विशेषाधिकार प्राप्त लोगों ने ही उठाया। हालत और भी बदतर हो गए। पहले जो राजनीति, त्याग व सेवा का कार्य था आज मुनाफे का धंधा है। देश गुलामी के जाल में फंस चुका है। सातवाँ दशक आते-आते आज़ादी से मोहभंग की प्रक्रिया शुरू हो गई थी। भारत के शासक वर्ग के खिलाफ़ जन असंतोष तेज़ हो गया था जिसकी अभिव्यक्ति राजनीति में ही नहीं, संस्कृति और साहित्य में भी हुई। इस दौर में पंजाबी साहित्य के क्षेत्र में नई पीढ़ी के कवियों ने पंजाबी कविता को नया रंग रूप प्रदान किया। अवतार सिंह पाश इन्हीं की अगली पंक्ति में था।''

अवतार सिंह धर्मिक कट्टरता के खिलाफ और हिंसा के खिलाफ था इसीलिए खालिस्तानियों ने उसे गोली से भून दिया।

मानवीय मूल्यों के प्रेरक सिंह गुरुओं की महान् गाथाओं के साथ उपन्यासकार ने धर्मिक कट्टरता और हिंसा के खिलाफ अपनी चिंताओं को व्यक्त किया है। ''औरंगजेब के शासन काल में जब कश्मीरी पंडित आनंदपुर साहिब गुरुतेग बहादुर के दरबार में पहुँचे...गुरु तेग बहादुर का जीवन कार्य ही अपने हिन्दू धर्म की रक्षा करने का भगीरथ प्रयत्न था। सारी बातें सुनकर वे सोच में पड़ गए। कुछ समय के मनोमंथन के बाद वे बोल उठे इस समय देश और धर्म की रक्षा का एकमात्र उपाय किसी महापुरुष का बलिदान है। ....उनका नौ वर्ष का पुत्र गोविन्द राय पास ही खड़ा था उसने तुरंत कहा पिताजी इस पवित्र कार्य के लिए आप से बढ़कर कौन महापुरुष है।''

उपन्यासकार ने उपन्यास में स्पष्ट किया है कि गुरु गोविन्द सिंह ने भी धर्म रक्षा के लिए अपने चार पुत्र अजीत सिंह, जुझार सिंह, जोरावर सिंह और फतेह सिंह का बलिदान कर दिया था। उनकी आगे की पीढ़ी खालिस्तानी सोच में पड़कर कैसे भटक गई है? यह चिंता लेखिका उपन्यास में उभारती है।

उपन्यास में एस.पी. सुक्खी, डॉ. सम्पदा को कहता है ''दीदी मैं पंजाब में अपनी तब्दीली करवाना चाहता था, अब नहीं। पंजाब के हिन्दू-सिक्खों में रोटी-बेटी के संबंध थे। भारतीय शासन वर्ग द्वारा पैदा किए गए खालिस्तानी पृथकतावादियों शरारती तत्त्वों और पड़ोसी देश की अलगाववादी ताकतों ने सब गड़बड़ कर दिया।'' पंजाब के बदलते परिवेश की वास्तविकता लेखिका ने चित्रित की है।

आतंकवाद के कारण एक दूसरा दर्द भी लेखिका ने व्यक्त किया है ''पीढ़ी दर पीढ़ी जो हिन्दू परिवार सिक्ख धर्म के अनुयायी थे और गुरुद्वारों में जाते थे, वे गुरुद्वारों में असहज होने लगे। दोनों में परोक्ष-अपरोक्ष दरार आ गई थी।'' लेखिका द्वारा हिन्दू-सिक्ख संस्कृति के सद्भाव का प्रयास सराहनीय है।

यह सुक्खी आई.पी.एस. की नौकरी के त्यागपत्र भेजकर अमेरिका में इंटरनेशनल लॉ की पढ़ाई करने लग जाता है, जहाँ से सोनल पी-एच.डी. का कार्य करना चाहती है। इस प्रकार उपन्यास अपने चरमोत्कर्ष पर समाप्त हो जाता है। रिश्ते नातों के संसार में जहाँ परिभाषित संबंध (चाचा, चाची, मामा, नाना) अर्थहीनता को प्राप्त हो रहे हैं। वही मास्टर जी के लड़के पम्मी और सुक्खी इस परिवार के लिए (मीनल और सोनल के लिए) मूल्यवान और अर्थवान हो उठे हैं। यह लेखिका की नई सोच को व्यक्त करता है और प्रेम संबंधों के सार्थक स्वरूप का उदाहरण प्रस्तुत करके परम्परागत सोच से बाहर निकालने का लेखिका का यह प्रयास भी स्तुत्य है।

लेखिका ने आदर्शात्मक समाधान भी दिए हैं। सोनल और सुखवंत विदेश में रहते हुए (पेरिस में पढ़ाते हुए) एक संस्था बनाते हैं जिसमें विदेशों में देह व्यापार में झोंकी गई भारतीय लड़कियों को खोजना और उन्हें मुक्त करवाने के लिए कार्य करना, पंजाब के गाँवों के प्रतिभाशाली बच्चों को उच्च शिक्षा दिलवाना और चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान करना उनका लक्ष्य है।

उपन्यासकार ने कुछ जीवनानुभवों और मूल्यगत सत्यों को विचारों में व्यक्त किया है-

''भविष्य की चिंताओं में मनुष्य वर्तमान को जीना मूल जाता है और स्वयं का जीवन दूभर कर लेता है।''

''जिस दिन मानव वर्तमान में जीना सीख लेगा, बहुत सी परेशानियों और चिंताओं से मुक्त हो जाएगा।''

उपन्यास की लेखिका विदेश में रहती हैं और अपने देश भारतवर्ष भी आती-जाती रहती हैं। इसीलिए देश-विदेश के रहन-सहन, आचार-विचार और जीवन मूल्यों का भी तुलनात्मक चित्रण करती हैं-''सार्थक इस देश के अनुशासन, यहाँ की व्यवस्था, और लोगों के सेवाभाव से बहुत प्रभावित है। इस देश का अच्छा-बुरा सब समझते हैं। हालाँकि यह बात नहीं कि यहाँ बुरे लोग नहीं हैं जो बुरे हैं, बहुत बुरे हैं। पर वे भी सड़कों पर लघुशंका का निवारण नहीं कर सकते। सड़कों पर थूक नहीं सकते। कत्ल, बलात्कार करके छूट नहीं सकते। यहाँ रंग भेद है, पर देश को रंगने का किसी को अधिकार नहीं। गन्दी सोच के लोग हैं पर उन्हें देश को गंदा करने का हक नहीं। देश सबका है और इसे साफ रखना सबकी ज़िम्मेदारी है।'' लेखिका चाहती है कि उसके भारतवर्ष की तस्वीर भी अच्छी बने। देश-विदेश के नियम कायदों और जीवन पद्धतियों की तुलना करते हुए लेखिका ने परोक्ष रूप में भारत वर्ष की धर्मिक-विसंगतियों और कानून के ढीले-ढाले रवैयों का चित्रण भी किया है। और विदेश (अमेरिका) की व्यवस्था की प्रशंसा भी की है ''आप किसी भी सोच के हैं, किसी भी विचारधारा के, किसी भी धर्म में विश्वास रखते हैं, कट्टरपंथी हैं या उदारवादी आपको कोई कुछ नहीं कहेगा। आप धड़ल्ले से यहाँ रह सकते हैं, जहाँ आपने पर्यावरण को बिगाड़ने की कोशिश की, वातावरण को अशुद्ध किया और कानून का उल्लंघन करने या उसे हाथ में लेने की कोशिश की, तो समझिए आप गए। कानून सज़ा देगा। यहाँ का कानून किसी का लिहाज़ नहीं करता।''

लेखिका अपने इस वक्तव्य से अपने देश में जो असुन्दर है उसे सुन्दर बनाने के

लिए प्रयत्नशील दिखाई देती है। विदेश में बसी उपन्यासकार वहाँ की व्यवस्था और मूल्यों से प्रभावित हैं। सरकारी, गैरसरकारी संस्थाओं के साथ लोग भी अपने दायित्व को समझते हैं ''तकनीकी प्रगति से यह लाभ अवश्य हुआ कि किसी भी तरह के संकट के समाचार विभिन्न संचार माध्यमों के माध्यम से प्रत्येक मनुष्य तक पहुँच जाते हैं। और हरेक को कठिन घड़ी के लिए तैयार होने का समय मिल जाता है। इस देश की व्यवस्था बड़ी मुस्तैद है और यहाँ के जीवन की सबसे बड़ी खूबी है मनुष्य के जीवन की महत्ता को समझा और आने वाले खतरों को गंभीरता से लेना। सरकारी तंत्र अप्रत्याशित घटनाओं के जूझने के लिए सर्तकता से तैनात हो जाता है। स्थानीय लोग और गैर सरकारी संस्थाएँ भी सचेत हो जाती हैं। हर कार्य को 'सरकार का काम है' नहीं समझा जाता। लोग स्वयं भी अपने लिये खड़े होते हैं।''

उपन्यास में सोनल, रॉबर्ट और डनीस के यहाँ शरण लेती है। वह उनसे प्रभावित होती है। 80 वर्ष के आस-पास की उम्र में भी दंपति बच्चों पर आश्रित नहीं रहते ''जब तक हाथ-पाँव काम कर रहे हैं, हम किसी पर भी यहाँ तक कि बच्चों पर भी निर्भर नहीं रहना चाहते। जब शरीर साथ छोड़ेगा तो उन्होंने ही हमारी देखभाल करनी है। अभी से उन्हें क्यों परेशान करें।''

सोनल, रॉबर्ट अंकल को डनीस आंटी के साथ घर के काम में हाथ बँटाते देखती है और सोचती है कि हमारे देश में तो सारे काम पत्नी को ही करने होते हैं। यह समझ रॉबर्ट और डनीस जैसे लोगों से लेनी चाहिए।

तूफ़ान की आशंकाओं का चित्रण स्वाभाविक जान पड़ता है। परिवेश का प्रामाणिक चित्र उपन्यास में उभरता है ''उस दिन वातावरण में घबराहट थी। तनाव था। बेचैनी थी। सड़कों पर कारें तेज़ी से भाग रही थीं। शहर के सारे ग्रोसरी स्टोर खाली हो चुके थे। लोगों ने खाने-पीने की वस्तुओं से घर भर लिए थे। एक अनजाना भय सबके भीतर बैठ चुका था। किसी को पता नहीं था, क्या होने वाला है और क्या-क्या उन्हें भुगतना पड़ेगा? सोचकर ही लोग परेशान थे।''

विदेशी परिवेश की अभिव्यंजना में लेखिका का पर्याप्त सफलता मिली है। उपन्यासकार अपने वतन के रिश्ते-नातों की पीड़ा से जुड़ती है और मैत्री भावना के मूल्य को समझाती है ''यहाँ तो मित्र ही परिवार हैं। दु:ख-सुख के भागीदार। अपने परिवार तो देश में छूट गए और साथ ही छूट गए ढेरों पल, सुखद यादें, रिश्ते और नाते। उनके लिए हम परदेसी हो गए और साथ ही बन गए मेहमान।''

उपन्यास में चित्रात्मकता जगह-जगह अपना वैशिष्ट्य बनाए हुए है ''सड़क पर लोग दौड़ रहे थे। जागिंग कर रहे थे। मैं उन्हीं के साथ दौड़ने लगी। नाक की सीध में कई ब्लाक पार कर गई।.....हल्का-हल्का घुसपुसा हो रहा था। समझ नहीं आ रहा था किस तरफ जाऊँ।''

लेखिका ने सरल, सहज भाषा का प्रयोग किया है। तत्सम, तद्भव शब्दों के साथ पंजाबी, अंग्रेज़ी शब्दों का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है

''भारतीय मूल के लोगों के पास दालें, चावल, और आटा तो काफी मात्रा में होता है फिर भी बहुतों ने डिब्बाबंद फूड अपने स्टोर में समेट लिया था। घर-घर में टार्च लाइट्स, फ्लैश लाइट्स, बैटरियाँ, मोमबत्तियाँ इत्यादि कुछ इकट्ठा किया जा रहा था। अगर बिजली आनी बंद हो जाए तो वे काम आएँगी। जिन घरों में बिजली के चूल्हे थे उन्होंने गैस के सिलेंडर खरीद लिये और साथ ही गैस का चूल्हा भी।''

लेखिका ने अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग भी किया है ''वॉलन्टियर्ज आर कमिंग फ्राम अदर स्टेट्स एंड अदर सोसयटीज टू हेल्प दा विकटम्ज...।'' लेखिका ने पंजाबी भाषा का प्रयोग किया है। बाऊजी की भाषा है ''एथे दी पुलिस वि इनहाँ हरामियाँ ने खरीद लई ऐ, सारे एनहाँ दे अड्डे ते आंदे ने तो कोई मेरा साथ देन लई तियार नई।''

उपन्यासकार ने पंजाबी के सरल अनुवाद भी साथ में दिए हैं ताकि उपन्यास की भाषा दुरूहता प्राप्त न कर सके।

उपन्यास में लेखिका की काव्यात्मक भाषा द्रष्टव्य है

''भगत सिंह ने पहली बार पंजाब को
जंगलीपन, पहलवानी व जहालत से
बुद्धिवाद की ओर मोड़ा था
जिस दिन फाँसी दी गई
उनकी कोठरी में लेनिन की किताब मिली
जिसका एक पन्ना मुड़ा हुआ था
पंजाब की जवानी को
उसके आख़िरी दिन से
इस मुड़े पन्ने से बढ़ाना है आगे, चलना है आगे।''
(पाश की एक कविता)

संवादों को उपन्यासकार ज़रा और तराशती तो अच्छा होता। छोटे और संक्षिप्त संवाद कथा के विकास और पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को अभिव्यक्त करने में सार्थक भूमिका निभाते हैं। लेखिका को स्वयं अधिक न बोलना पड़ता। उपन्यास में लेखिका की स्वयं ज़्यादा बोलना पड़ रहा है। डायरी शैली का यह गुण भी है। मुख्य कथा सोनल के परिवार की है जो आद्यंत कसावट लिए हुए है, कहीं बिखराव नहीं है। इसके साथ ही वर्तमान जीवन की कथा डॉ. सम्पदा और सार्थक की है, दोनों को उपन्यासकार ने कौशल से सुगुंफ्रित किया है।

पात्रों के चरित्र चित्रण में स्वाभाविकता है। कहीं कोई अस्वाभाविकता दिखाई नहीं देती। ऐसा नहीं लगता कि उपन्याकार ने केवल कल्पना के सहारे इन पात्रों को उपन्यास में उतारा है ये पात्र जीते-जागते पात्र हैं जो जीवन की सच्चाई को अभिव्यक्त करते हैं और जीवन को उत्कर्ष की ओर ले जाने की प्रेरणा देते हैं। सोनल और सुखवंत इसी आदर्शवाद की ओर अन्मुख है। सद् पात्रों को जहाँ ऊँचाई दी है वहीं असद्पात्र भी अस्वाभाविक नहीं लगते हैं। लेखिका ने पात्रों की भीड़ नहीं इकट्ठी की है। पात्र लेखिका के हाथों की कठपुतली नहीं बने हैं। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यास जगत् की यह उपन्यास एक अमूल्य निधि है जो प्रासंगिकता एवं उपादेयता जैसी विशेषताओं से युक्त है।

****

मैत्रेयी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

कहीं कुछ रिक्त है
जीवन की कविताएँ

समीक्षक : ज्योति खरे

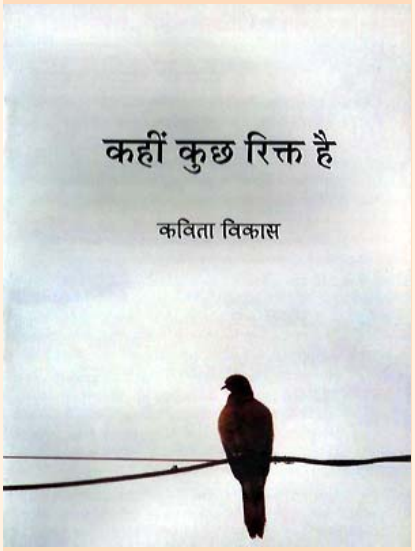

कहीं कुछ रिक्त है
लेखिका: कविता विकास
प्रकाशक:बोधि प्रकाशन - जयपुर
मूल्य :80 रूपये

कविता विकास के संग्रह 'कहीं कुछ रिक्त है' को पढ़ते समय पहले यह सोचना पड़ता है कि वर्तमान का जीवन कैसा है, समय कैसा है! क्योंकि हम जिस मनोदशा में जी रहें हैं, वह न तो संगठित है न एकलवादी, घर,समाज और रिश्तों में एक अनकहा खालीपन है, इसी खालीपन को कविता विकास ने अपनी रचनाओं में बहुत आत्मीयता से व्यक्त किया है, और मन की भीतरी परतों को अपनी अनुभूतियों से कुरेदा है। प्रत्येक रचनाकारों का स्वभाव ही होता है कि वह अपने आस-पास के वातावरण और जीवन की गतिविधियों को बारीकी से देखता है.... जी चाहता है, / भूलकर भाग-दौड़ कुछ सुस्ता लूँ /बरगद की छाँव में /कांपते हांथों से गिरता आशीष /समेट कर रख लूँ ताबीज में....

बरगद की छाँव में जहाँ पिता है,जो जीवन का सुख देता है और मन की पूरी बातें सुनता है... बातों को सहलाती उँगलियाँ / मीठी नींद सुलाती थी / तारों तक पहुँचने की ज़िद / जाने कैसे पूरी हो जाती थी....

वहीं हॉस्टल के दिनों में वार्डन है, युवा मन घर से दूर जाना चाहता है, अपनी मस्ती से जीना चाहता है पर कविता विकास ने इस युवा मन को अनुशासन में बाँधा है... मेरे लिए घड़ी की सुइयाँ स्वत: नहीं चली हैं / वार्डन ने तय किया था पैमाना/ कहाँ जाऊँ, क्या करूँ, कब आऊँ ...

ईश्वर एक अदृश्य शक्ति है इसे समझना और पहचानना सहज नहीं है, कवयित्री ने इसे समझा और अपने मन की परतों पर इस सत्य को बसाया.... उस सर्वेश्वर सत्य की खोज में / जब-जब जूझतीं हूँ / एक अखंडित मृग मरीचिका में / उलझती जाती हूँ / तुम अद्वितीय, अनंत, अनुपम हो / पर किसने देखा है यह रूप तुम्हारा.....

कवयित्री ने प्रेम की, अपनेपन की भी बहुत महीन व्याख्या की है कि वास्तव में प्रेम सम्पूर्ण दायित्व और समर्पण में ही समाहित रहता है, जो जीवन का सार होता है। पतझड़ की एक सूखी पत्ती थी /उठा कर तुमने उकेर दिया / सुंदर सी चित्रकारी/ भर दिया नेह का रंग/ कोरी कल्पनाएँ कसमसा उठीं / और मैं बसंत की बहार बन गई...

बोधि प्रकाशन से प्रकाशित कविता विकास के इस कविता संग्रह 'कहीं कुछ रिक्त है' में कुल 71 कविताएँ हैं; जो कवयित्री के सृजनात्मक सोच और उनकी रचनात्मक प्रतिबद्धता को उजागर करती हैं। इस संग्रह की कुछ कविताएँ बहुत गहरे तक मन में उतरती हैं और बहुत कुछ सोचने के लिए उकसाती भी हैं, धूप,पतझड़ बरगद, स्त्री, आसमां मेरे हिस्से का, मैं एक पेड़ होती,वह सर्वज्ञ है,मन,उगना आ गया है,मेरा शहर जी रहा है, मैं झील नहीं,जैसी कविताएँ मन को मथती हैं। रोज़मर्रा की ढेर सारी गतिविधियों, परिस्थितियों से गुज़रते हुए रचना लिखने के लिए विषय तलाश करना सहज नहीं है। कविता विकास ने अपने मन की परतों पर जमे अपने संस्कारों, अपने अतीत को ही सृजन का आधार बनाकर सहज भाव की कविताएँ गढ़ डाली। शायद यही कारण है कि इनका यह दूसरा कविता संग्रह है। सरल भाषा, आस पास के प्रतीक जो आम पाठक को कविता के साथ मानसिक रूप से जोड़े रखते हैं, रचनाओं के कथ्य समाज संस्कार और वर्तमान के जीवन को सवालों के दायरे में खड़ा कर बातचीत सा वातावरण निर्मित कर देते हैं। संग्रह की कविताएँ मनुष्य की विषम परिस्थितियों में टूटती मानसिकता को सहारा देतीं हैं। 'कहीं कुछ रिक्त है' कविता संग्रह पठनीय और संग्रहणीय है। कवयित्री कविता विकास की इसी तरह सार्थक काव्य यात्रा चलती रहे।

***

ब्रजेश राजपूत को अम्बादत्त भारतीय स्मृति शिवना सम्मान प्रदान किया गया

शिवना प्रकाशन द्वारा विश्व पुस्तक मेले में साहित्य मंच पर आयोजित शिवना सम्मान समारोह में पत्रकार श्री ब्रजेश राजपूत को अम्बादत्त भारतीय स्मृति शिवना सम्मान प्रदान किया गया। शिवना प्रकाशन द्वारा प्रति वर्ष दिये जाने वाले तीन सम्मानों में इस वर्ष सम्मानों के लिये साहित्यकारों के नाम चयन हेतु जो समिति बनाई गई थी उस समिति ने 'अम्बादत्त भारतीय स्मृति शिवना सम्मान' हेतु पत्रकार श्री ब्रजेश राजपूत को उनकी पुस्तक 'चुनाव, राजनीति और रिपोर्टिंग' हेतु चयनित किया था । आयोजन समारोह में माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. बी के कुठालिया, वरिष्ठ पत्रकार श्री राहुल देव तथा वरिष्ठ साहित्यकार श्री प्रेम जनमेजय अतिथि के रूप उपस्थित थे। अतिथियों ने शॉल श्रीफल पुष्प गुच्छ तथा सम्मान पत्र भेंट कर श्री ब्रजेश राजपूत को तीसरा अम्बादत्त भारतीय स्मृति सम्मान प्रदान किया। श्री ब्रजेश राजपूत ने इस अवसर पर अपनी पुस्तक को लेकर कई रोचक बातें उपसिथत श्रोताओं के साथ साझा कीं। इस अवसर पर बोलते हुए श्री प्रेम जनमेजय ने साहित्य तथा पत्रकारिता के बीच के रिश्तों तथा समाज से उनके संबंधों की विस्तार से चर्चा की। श्री राहुल देव ने ब्रजेश राजपूत की पुस्तक को अत्यंत रोचक तथा उपयोगी बताते हुए पुस्तक के बारे में चर्चा की। श्री बी के कुठालिया ने अपने वक्तव्य में कहा कि इस प्रकार की पुस्तकें पत्रकारिता के विद्यार्थियों के लिये बहुत उपयोगी साबित होती हैं। कार्यक्रम के आरंभ में अतिथियों का स्वागत श्री नीरज गोस्वामी श्रीमती इस्मत ज़ैदी श्रीमती वंदना अवस्थी तथा श्री शहरयार खान ने किया।

डॉ. लालित्य ललित को रमेश हठीला स्मृति शिवना सम्मान प्रदान किया गया

शिवना प्रकाशन द्वारा विश्व पुस्तक मेले में आयोजित शिवना सम्मान समारोह में व्यंग्यकार, कवि डॉ. लालित्य ललित को 'रमेश हठीला स्मृति शिवना सम्मान' प्रदान किया गया। यह सम्मान डॉ. ललित को उनकी पुस्तक 'मुखौटे के पीछे का सच' हेतु प्रदान किया गया। वरिष्ठ साहित्यकार तथा व्यंग्य यात्रा के संपादक डॉ. प्रेम जनमेजय, वरिष्ठ साहित्यकार तथा शोध दिशा के संपादक डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल, श्री नीरज गोस्वामी, श्रीमती वंदना अवस्थी, श्रीमती इस्मत ज़ैदी आदि अतिथियों ने शॉल श्रीफल तथा सम्मान पत्र भेंट कर डॉ. लालित्य ललित को यह सम्मान प्रदान किया। कार्यक्रम का संचालन शिवना प्रकाशन के श्री शहरयार अमजद ख़ान ने किया।

शिवना पुस्तक विमोचन समारोह संपन्न

शिवना प्रकाशन द्वारा विश्व पुस्तक मेले में आयोजित पुस्तक विमोचन समारोह में मुख्य अतिथि वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. कमल किशोर गोयनका, विशेष अतिथि द्वय वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. प्रेम जनमेजय एवं कथाकार डॉ. अजय नावरिया ने प्रकाशन की नई पुस्तकों नक़्क़ाशीदार केबिनेट (सुधा ओम ढींगरा), 101 किताबें ग़ज़लों की(नीरज गोस्वामी), अधूरे अफसाने (लावण्या शाह), अकाल में उत्सव (पंकज सुबीर), प्रेम गली अति साँकरी(राम रतन अवस्थी), ख़त-ए-अबयज़ (इस्मत ज़ैदी), भागीरथ बडोले समग्र (बसंत निरगुणे), सुधा ओम ढींगरा : रचनात्मकता की दिशाएँ (वंदना गुप्ता), सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में अभिव्यक्त तथा निहित समस्याएँ (रेशू पांडेय, निधिराज भडाना), दुष्यंत कुमार : एक शोधार्थी की नज़र से (डॉ. जैमिनी पंड्या) का विमोचन किया।

समाचार-सार

संतोष चौबे के कहानी संग्रह नौ बिन्दुओं का खेल का लोकार्पण

यह दौर अपने समय और सरोकारों को लेकर नई रचनात्मक चुनौतियों का है। लेखक को चाहिए कि वे विषय और भाषा के तयशुदा दायरे से बाहर निकालकर वैचारिक उद्वेलन के लिए समाज को प्रेरित करें। संतोष चौबे इस अर्थ में अपनी कहानी को नया विस्तार देते हैं। उनकी कहानी घटनाओं का पूर्वाभास जगाती मौजूदा दौर की हक़ीक़त बयां करती है। उक्त वक्तव्य साहित्य और संस्कृति के मूर्धन्य विद्वान-आलोचक डॉ नंदकिशोर आचार्य ने भारत भवन में हिंदी के सुप्रसिद्ध कथाकार संतोष चौबे के नए कथा संग्रह नौ बिन्दुओं का खेल के लोकार्पण अवसर पर दिया।

इस अवसर पर संतोष चौबे ने कथा संग्रह की कहानी नौ बिन्दुओं का खेल का बहुत ही रोचक और प्रभावी पाठ किया। हर क्षेत्र में नवाचार के लिए जाने पहचाने जाने वाले संतोष चौबे ने कहानी पाठ में भी कुछ नए प्रयोग किये। कहानी से सम्बंधित कुछ चित्रों को कहानी पाठ के साथ प्रोजेक्टर के जरिये परदे पर दिखाया गया। इसके साथ ही कहानी पाठ के आरम्भ और समापन पर कहानी के भाव से जुड़े संगीत का अद्भुत प्रयोग भी किया गया। नौ बिन्दुओं का खेल कहानी आज के कार्पोरेट, बाज़ार, राजनीति और समाज के विरोधाभासों की परतें खोलते हुए एक नए तरह का विश्लेषण प्रस्तुत करती है। रचना पाठ से पूर्व संतोष चौबे ने कहा की वे हमेशा अपने वक्ती दौर के कुछ नए प्रश्नों और द्वंद्वों के साथ अपनी रचनाओं में दाखिल होते रहे हैं। लम्बी कहानियों के इस नए संग्रह में भी यही आग्रह रहा है।

समारोह के मुख्य वक्ता हैदराबाद से आये नंदकिशोर आचार्य ने चौबे को हिंदी कहानी में नवाचार के साथ प्रस्तुत होने और अपने समय की जटिलताओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने वाला समर्थ कथाकार बताया। आचार्य ने कहा की संतोष चौबे की कहानी के पात्र कथानक की रोचकता को कायम रखते हुए नई बहस को शक्ल देते हैं।

दिल्ली से आये युवा आलोचक वैभव सिंह ने संग्रह को एक लेखक का सही हस्तक्षेप बताया।

समारोह के आरम्भ में कला समीक्षक विनय उपाध्याय ने संतोष चौबे को बहुआयामी सर्जक बताते हुए उनके कथा व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला। वनमाली सृजन पीठ और पहले पहल प्रकाशन द्वारा आयोजित इस समारोह में साहित्य, कला और शैक्षणिक जगत् के गणमान्य हस्ताक्षर मौजूद थे। अंत में पहले पहल प्रकाशन के संचालक महेंद्र गगन ने आभार व्यक्त किया।

अवनीश सिंह चौहान को शकुंतला प्रकाश गुप्ता साहित्य विभूति सम्मान

मानसरोवर कन्या इंटर कालेज में मानसरोवर एडुकेशन फाउंडेशन द्वारा साहित्य और कला विभूति सम्मान समारोह का आयोजन किया गया। इस समारोह में साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने वाले, वेब पत्रिका पूर्वाभास के संपादक, साहित्यकार डॉ. अवनीश सिंह चौहान को 'शकुंतला प्रकाश गुप्ता साहित्य विभूति सम्मान' से सम्मानित किया गया।

पुष्पगंधा के संपादक श्री विकेश निझावन को सारथी साहित्य एवं कला सम्मान

पुष्पगंधा के संपादक तथा वरिष्ठ साहित्यकार श्री विकेश निझावन को साहित्य के क्षेत्र में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय जगत् में उल्लेखनीय योगदान हेतु तरंगिनी आर्ट्स, मुम्बई के तत्वाधान में सारथी साहित्य एवं कला सम्मान -2015 के अंतर्गत सुश्री लता शिखर द्वारा मुम्बई में सम्मानित किया गया।

शैलसूत्र की सम्पादक श्रीमती आशा शैली को तीलू रौतेली सम्मान

हिन्दी साहित्य के प्रति समर्पित साहित्यकार और शैलसूत्र की सम्पादक श्रीमती आशा शैली को विगत दिनों उत्तराखण्ड सरकार द्वारा तीलू रौतेली पुरस्कार उत्तराखण्ड के मुख्यमंत्री हरीश रावत द्वारा प्रदान किया गया। महिला दिवस पर उक्त सम्मान प्रत्येक क्षेत्र की किसी एक प्रतिभाशाली महिला को दिया जाने वाला उत्तराखण्ड सरकार उच्चस्तरीय सम्मान है जिसमें 21 हज़ार की नकद राशि और प्रमाणपत्र दिया जाता है। कुल मिलाकर उत्तराखण्ड की तेरह महिलाओं को यह पुरस्कार दिया गया।

शिवना प्रकाशन : वर्ष 2016 नए सेट की किताबें

उपन्यास

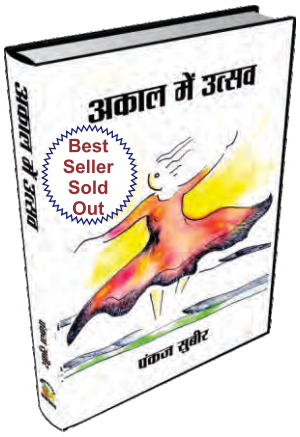

बेस्ट सेलर ग़ज़ल संग्रह 'डाली मोगरे की' का तीसरा परिवर्धित संस्करण

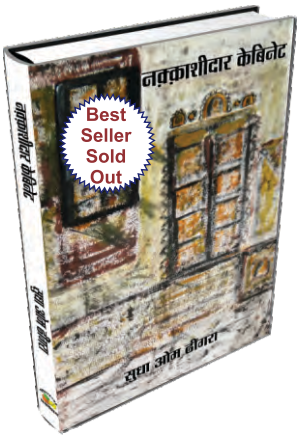

समग्र

अकाल में उत्सव
पंकज सुबीर
पृष्ठ 224, मूल्य 150 रुपये

नक़्क़ाशीदार केबिनेट
सुधा ओम ढींगरा
पृष्ठ 120, मूल्य 150 रुपये

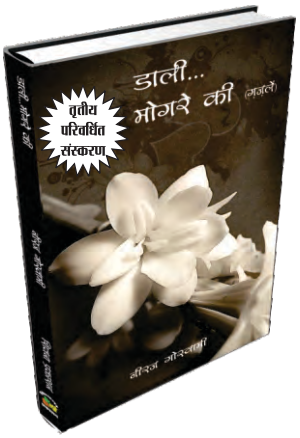

डाली मोगरे की (ग़ज़ल)
नीरज गोस्वामी
पृष्ठ 144, मूल्य 150 रुपये

भागीरथ बड़ोले समग्र
भाग 1
कहानियाँ एवं व्यंग्य
संपादन वसंत निरगुणे
पृष्ठ 592, मूल्य 650 रुपये

भागीरथ बड़ोले समग्र
भाग 2
एकांकी एवं नाटक
संपादन वसंत निरगुणे
पृष्ठ 616, मूल्य 650 रुपये

कहानी संग्रह

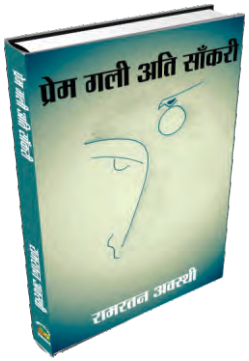

ग़ज़ल / कविता संग्रह

प्रेम गली अति साँकरी (कहानी)
रामरतन अवस्थी
पृष्ठ 104, मूल्य 100 रुपये

अधूरे अफ़साने (कहानी)
लावण्या दीपक शाह
पृष्ठ 184, मूल्य 250 रुपये

मुखौटे के पीछे का सच (कविता)
डॉ. लालित्य ललित
पृष्ठ 240, मूल्य 200 रुपये

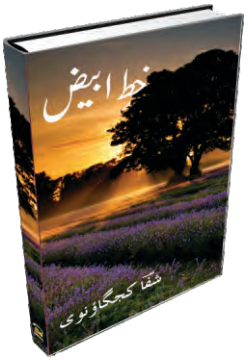

ख़त-ए-अबयज़ (ग़ज़ल)
शिफ़ा कजगाँवी
पृष्ठ 96, मूल्य 150 रुपये

आलोचना / शोध

सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में अभिव्यक्त तथा निहित समस्याएँ
निधिराज भडाना, रेशू पाण्डेय
पृष्ठ 104, मूल्य 150 रुपये

101 किताबें ग़ज़लों की (आलोचना)
नीरज गोस्वामी
पृष्ठ 408, मूल्य 150 रुपये

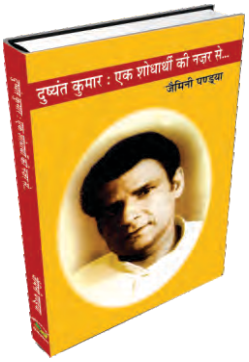

सुधा ओम ढींगरा रचनात्मकता की दिशाएँ
(आलोचना) वंदना गुप्ता
पृष्ठ 160, मूल्य 150 रुपये

दुष्यंत कुमार :
एक शोधार्थी की नज़र से
(आलोचना) डॉ. जैमिनी पण्ड्या
पृष्ठ 88, मूल्य 150 रुपये

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9584425995,
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart http://www.flipkart.com
Paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

Vibhom Swar Quarterly April-June 2016 RNI : MPHIN32709

सिंहस्थ
कुंभ महापर्व 2016
विक्रम संवत् 2073

प्रिय श्रद्धालुगण,

यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे मध्यप्रदेश के साढ़े सात करोड़ नागरिकों की ओर से आपको सिंहस्थ 2016 के पावन अवसर पर आमंत्रित करने का अवसर मिला है। श्रद्धा एवं विश्वास का यह महापर्व पावन नगरी उज्जैन में 22 अप्रैल से 21 मई 2016 तक आयोजित होगा। सिंहस्थ जीवन का वह एकमात्र अवसर है जहाँ स्वयंभू महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग के दर्शन, मोक्षदायी पुण्य सलिला क्षिप्रा में स्नान तथा आनंददायी आध्यात्मिक संगम सब कुछ एक साथ संभव हो पाता है।

सिंहस्थ में अनेक देशों तथा पूरे भारत से श्रद्धालु आते हैं। क्षिप्रा के अमृत से साक्षात्कार आपके लिए एक अविस्मरणीय अनुभव होगा।

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

आस्था एवं अध्यात्म का अद्भुत उत्सव

सिंहस्थ

कुंभ महापर्व उज्जैन

22 अप्रैल - 21 मई, 2016

स्नान पर्व

1.	सिंहस्थ प्रथम पर्व स्नान	- 22 अप्रैल, 2016
2.	पंचशनि यात्रा	- 1 से 6 मई, 2016
3.	वरुथिनी एकादशी	- 3 मई, 2016
4.	पर्व स्नान	- 6 मई, 2016
5.	अक्षय तृतीया	- 9 मई, 2016
6.	शंकराचार्य जयंती	- 11 मई, 2016
7.	वृषभ संक्रांति	- 15 मई, 2016
8.	मोहिनी एकादशी	- 17 मई, 2016
9.	प्रदोष पर्व	- 19 मई, 2016
10.	नृसिंह जयंती पर्व	- 20 मई, 2016
11.	शाही स्नान	- 21 मई, 2016

पवित्र पंचक्रोशी यात्रा एक से 6 मई 2016 तक होगी।

म.प्र. माध्यम/77822/2015

क्षिप्रा के तट पर अमृत का मेला

विस्तृत जानकारी के लिए वेबसाइट देखें : www.simhasthujjain.in www.mp-tourism.com/simhastha-kumbh

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।